महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

वर्ष : ६३ अंक : १६

दयानन्दाब्द: १९७

विक्रम संवत्: श्रावण शुक्ल २०७८

कलि संवत्: ५१२२

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२२

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९/५९

परोपकारी

अगस्त द्वितीय २०२१

अनुक्रम

०१. महर्षि दयानन्द की उपेक्षा...	सम्पादकीय	०४
०२. अग्नि सूक्त-१०	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. प्रभु कैसा है ?	पं. चमूपति	१५
०५. कल्याण का मार्ग : निष्कामता	कन्हैयालाल आर्य	२१
०६. योग-दर्शन में चित्त व सम्बन्धित...	डॉ. हरिश्चन्द्र	२३
०७. स्वाध्याय-यज्ञ का व्रत-श्रावणी पर्व	डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी	२६
०८. संस्था-समाचार	ब्र. रोहित आर्य	२८
०८. संस्था की ओर से...		३१
०९. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३३
१०. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द की उपेक्षा : सोची-समझी रणनीति?

जिस महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपना सर्वस्व त्यागकर इस सोई आर्य/हिन्दू जाति को जगाने हेतु अपना बलिदान दिया और उस जाति में नई चेतना का संचार किया। जिस महापुरुष ने वेदों का पुनरुद्धार करके उनका भाष्य किया और उनके दार्शनिक सिद्धान्तों पर 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' जैसा बृहत् ग्रन्थ लिखा। जिसने परिवारदर्शन, समाज-दर्शन, राजनीतिदर्शन, वैदिकदर्शन, मतमतान्तरों के अनेक दर्शनों का अभूतपूर्व समीक्षण करते हुए 'सत्यार्थप्रकाश' सदृश क्रान्तिकारी ग्रन्थ लिखकर उन दर्शनों के सत्य का उद्‌घाटन किया दर्शनशास्त्रों के ऐसे प्रस्तोता महान् दार्शनिक महर्षि दयानन्द जी को, सभी विश्वविद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करनेवाली सरकारी संस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने अपने दर्शनशास्त्र के नेट (NET) के पाठ्यक्रम से बाहर का रास्ता दिखा दिया है। उनकी बहुमुखी विद्वत्ता और प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखा गया। इसे सोची-समझी रणनीति नहीं कहेंगे, तो क्या कहेंगे? इसके मूल में अवश्य किसी विचारधारा के पूर्वाग्रही व्यक्ति का हस्तक्षेप रहा है, जो ऐसा पक्षपात किया गया है।

कष्टप्रद समाचार यह है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने नेशनल एलिजीबिलिटी टैस्ट (NET)के परीक्षार्थियों के लिए दर्शनशास्त्र विषय (Philosophy) का नया पाठ्यक्रम निर्धारित किया है। इस पाठ्यक्रम की इकाई पाँच (V) में यूजीसी ने उन्नीसवीं और बीसवीं शती के समकालीन दार्शनिकों और उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का समावेश किया है।

इनमें स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, योगी अरविन्द, ज्योतिराव फुले, डॉ. अम्बेडकर, रवीन्द्रनाथ टैगोर और दीनदयाल उपाध्याय आदि का नाम सम्मिलित है। किन्तु उन्नीसवीं शती के दार्शनिक महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम गायब है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस सूची में जो नाम दार्शनिक के रूप में सम्मिलित किये गये हैं उनमें अधिकांश महर्षि दयानन्द से प्रत्यक्षत: प्रभावित हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में ऋषि दयानन्द के सामाजिक तथा दार्शनिक योगदान का उल्लेख किया हुआ है। इसके अतिरिक्त एक और आश्चर्य की बात है। वह यह कि काल-सीमा को त्यागकर उन्नीसवीं और बीसवीं शती के दार्शनिकों में एक हजार वर्ष पूर्व के दक्षिण के श्री तिरुवल्लुवर को भी सम्मिलित किया है। हमें इनमें सम्मिलित किये दार्शनिकों में से किसी से कोई आपत्ति नहीं है किन्तु इन पक्षपातों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह पाठ्यक्रम शैक्षिक न होकर राजनीतिक अधिक है और इसमें पाठ निर्माता लेखकों ने ऋषि दयानन्द को सोच-समझकर उपेक्षित किया है। यह आश्चर्य की बात है कि शिक्षा के क्षेत्र में इतनी संकीर्ण विचारधारा के लोग घुसपैठ करके बैठे हैं!!

महर्षि दयानन्द गम्भीर दार्शनिक थे। उन्होंने वेदों के त्रैतवाद दर्शन की पुन: तर्क-प्रमाणों के आधार पर प्रतिष्ठा की। त्रैतवाद वैदिक काल में स्थापित एक प्रौढ़ दर्शन है। जिसका समग्र वैदिक वाङ्मय में उल्लेख मिलता है। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति के विषय में महर्षि द्वारा प्रस्तुत तर्क अकाट्य हैं। जितनी दृढ़ता और तार्किकता के साथ त्रैतवाद की प्रतिष्ठा महर्षि ने की है वैसी उनकी कालावधि उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में अन्य किसी सूची में वर्णित कथित दार्शनिक ने नहीं की। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तीन समुल्लास त्रैतवाद की प्रतिष्ठा में समर्पित किये हैं। जिसने दर्शन विषयक एक प्राचीन सिद्धान्त को दर्शन जगत् में पुन: उद्धार करके प्रतिष्ठित किया, उसको दार्शनिकों में सम्मिलित न करना उस दार्शनिक के प्रति पक्षपात और अन्याय है। इसी कारण आम आर्यों में एक धारणा घर कर गई है कि कुछ संगठन और विशेष विचारधारा के लोग योजनापूर्वक महर्षि के साथ पक्षपात तथा उपेक्षा करते हैं। आर्यजनों में वे चिह्नित भी हो चुके हैं। ऐसा करके वे अपने संगठनों की ही हानि कर रहे हैं। महर्षि की उपेक्षा करने से महर्षि की और उनकी आर्य विचारधारा की कोई हानि नहीं हो सकती, क्योंकि वह सत्य और अकाट्य तर्कों के सुदृढ़ स्तम्भों पर खड़ी हुई है। ज्यों-ज्यों उसको हानि पहुँचाने की कोशिश हुई है वह और सुदृढ़ और विकसित हुई है। महर्षि के जीवनकाल में भी उनकी विचारधारा का खूब विरोध हुआ किन्तु वह चहुं

ओर फूलती-फलती गई। महर्षि की विचारधारा का विरोध करके विरोधी लोग अपने पक्ष की ही हानि करेंगे। हाँ, आर्यसमाजों आर्यसभाओं, आर्यों के संगठनों और आर्यनेताओं के लिए यह चिन्ता का विषय होना चाहिए कि उनके होते उनके दार्शनिक महापुरुष की खुल्लमखुल्ला अन्यायपूर्वक उपेक्षा की जा रही है। इस उपेक्षा के विरुद्ध जो प्रयास इन सबके द्वारा किये जाने चाहिये थे, वे नहीं किये गये। हमने देखा है कि विगत समय में आर्यजनों ने राममन्दिर के लिए अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जाकर भी सनातनी बन्धुओं का सहयोग किया था। कुछ आर्यजन और नेता चाँदनी चौक दिल्ली के एक अन्य मन्दिर के बचाव और उसकी मूर्ति की बरामदगी के लिए आन्दोलन करते भी दिखे, परन्तु महर्षि के यूजीसी विषयक सम्मान की रक्षा के लिए वे कहीं भी सक्रिय दिखाई नहीं दिये। यह खेदजनक और निराशाजनक है। केवल प्रथम सक्रिय स्वामी सच्चिदानन्द तथा सार्वदेशिक सभा के एक गुट के प्रधान स्वामी आर्यवेश ने और प्रो. रामचन्द्र, कुरुक्षेत्र ने इस विषय में अपना असन्तोष, विरोध और आक्रोश प्रकट करके आर्यसमाज की ओर से प्रतिक्रिया में अपनी उपस्थिति मीडिया में अंकित कराई है। इस प्रकार इन्होंने महर्षि दयानन्द के सम्मान की रक्षा अवश्य की है।

यूजीसी के अतिरिक्त आर्यसमाज को आहत करने वाली दूसरी घटना इन्हीं दिनों हरियाणा के भिवानी शहर में घटित हुई है। यदि प्रधानमन्त्री मोदी के जीवन-परिचय में आज कोई इतिहासकार यह लिख दे कि ''मोदी जी के शिक्षक गुरु स्वामी विवेकानन्द थे'', तो हमें आश्चर्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि आजकल ऐसे ही मूर्ख अज्ञानी इतिहासकार पैदा हो गये हैं और ऐसे उनके प्रकाशक हो गये हैं, जिनको न तो यह पता है कि वे क्या कबाड़ प्रकाशित कर रहे हैं और न ही महापुरुषों के इतिहास के सही तथ्यों का ज्ञान है। स्वामी विवेकानन्द के नाम का आजकल इतना बोलबाला है कि उनको महिमामण्डित करने के लिए लोग उनके नाम से कुछ भी बढ़ा-चढ़ाकर लिख देते हैं। विगत दिनों ऐसा ही चमत्कार एक जीवनी लेखक डॉ. राकेश वशिष्ठ (भिवानी, हरियाणा) ने अपनी 'विद्यालय और समाज' नामक पुस्तक जो कि हरियाणा के विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षु अध्यापकों के बी.एड. तथा शिक्षाशास्त्री के पाठ्यक्रम में पढ़ायी जा रही है, उसमें कर दिखाया। उसने एक नहीं, छह बातें भ्रामक लिखकर महर्षि दयानन्द के इतिहास को विकृति का पुलिन्दा बना दिया है। वे छह विकृत बातें हैं-

१. लेखक अपनी पुस्तक के इकहत्तर पृष्ठ पर लिखता है कि महर्षि दयानन्द को वेदों की शिक्षा देनेवाले उनके गुरु स्वामी विवेकानन्द थे। लेखक ने रत्तीभर बुद्धि का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि स्वामी विवेकानन्द का जन्म १८६३ ईसवी में हुआ था। जिस समय सन् १८७५ में महर्षि ने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश लिखा था तब विवेकानन्द केवल बारह वर्ष के बालक थे और जब स्वामी जी का १८८३ में देहान्त हुआ तब विवेकानन्द २२ वर्ष के थे। इतनी छोटी वय का बालक कभी अपने से ढाई गुनी आयु के महाविद्वान् का गुरु नहीं हो सकता। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द जीवन में कभी मिले ही नहीं। स्वामी विवेकानन्द ने वेद भी नहीं पढ़े थे, फिर वे दूसरों को वेद कैसे पढ़ा सकते थे? इस बात को बच्चा-बच्चा जानता है कि स्वामी दयानन्द के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द थे। लेकिन लेखक राकेश वशिष्ठ बच्चों जितना भी ज्ञान नहीं रखता?

२. अज्ञानी लेखक ने दूसरी तथ्यहीन बात यह लिखी है कि स्वामी दयानन्द का जन्म सन् १८१४ में और निधन १८८९ में हुआ। जबकि यह सुनिश्चित तथ्य है कि उनका जन्म १८२४ में और निधन १८८३ में दीपावली के दिन हुआ था। यह लेखक ये नयी तिथियाँ पता नहीं कहाँ से कल्पित करके लाया है? या साजिश करके आरोपित की हैं!!

३. तीसरी निराधार बात यह लिखी है कि दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज (डी.ए.वी.) लाहौर की स्थापना महर्षि दयानन्द ने की थी। आर्यसमाज के 'कखग' का जाननेवाला भी यह तथ्य जानता है कि उसकी स्थापना महात्मा हंसराज ने सन् १८८६ में की थी। तब महर्षि जीवित ही नहीं थे। उनका देहान्त १८८३ में हो चुका था। इस बात से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि लेखक कितना बुद्धिशून्य है, क्योंकि मृतक व्यक्ति से कॉलेज की स्थापना करवा रहा है!!

४. चौथी बेसिरपैर की बात अज्ञानी लेखक ने यह

लिखी है कि स्वामी दयानन्द ने हरिद्वार के पास गंगातट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। जबकि यह प्रसिद्ध तथ्य है कि उसकी स्थापना सन् १९०२ में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने की थी। लेखक ने उक्त कथन लिखकर कैसा बुद्धि का दिवालिया प्रदर्शित किया है, क्योंकि इसी लेख में लेखक का कथन ऊपर दिखाया है कि महर्षि दयानन्द का निधन १८८९ में हो चुका था। अत: लेखक के अनुसार वे जीवित ही नहीं थे। फिर मृतक ऋषि ने १९०२ में गुरुकुल की स्थापना कैसे कर दी? लेखक ने अपने ही लिखे के विरुद्ध बेसिरपैर की बात लिखते हुए भांग चढ़ा रखी थी क्या!

५. पाँचवीं बेतुकी बात यह लिखी गई है कि स्वामी दयानन्द ने अपने जीवनकाल में शुद्धि आन्दोलन चलाया और अनेक विधर्मियों को शुद्ध करके अपने धर्म में लौटाया। सत्य यह है कि शुद्धि का यह कार्य भी स्वामी श्रद्धानन्द ने किया था। तब भी स्वामी दयानन्द जीवित नहीं थे।

६. छठी गलत बात यह लिखी है कि स्वामी दयानन्द आधुनिक अंग्रेजी और प्राचीन शिक्षा-पद्धति के समर्थक थे। महर्षि दयानन्द वैदिक आर्ष शिक्षा पद्धति के दृढ़ समर्थक थे। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति का समर्थन कहीं नहीं किया। यह कोरी गप्प है।

ऐसा ज्ञात होता है कि राकेश वशिष्ठ का परोसा गया यह इतिहास एक ही गलती का उदाहरण नहीं है, अपितु गलतियों का पुलिन्दा है। ऐसा सन्देह होता है कि इतनी सारी गलतियाँ संयोग नहीं, अपितु प्रयोग है। भ्रान्तियाँ फैला कर उस प्रयोग को आजमा के देखा गया है। हो सकता है इसके सूत्र कहीं और जुड़े हों। यह आर्यसमाज के इतिहास और वातावरण को बिगाड़ने का निन्दनीय प्रयास है।

इस घटना को लेकर किसी उच्च दायित्वपूर्ण सभा ने तो नहीं, किन्तु स्वामी सच्चिदानन्द, स्वामी आर्यवेश और आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के प्रधान मा. रामपाल ने सक्रियता दिखाते हुए विरोध प्रकट किया है जिसके परिणामस्वरूप लेखक डॉ. राकेश वशिष्ठ और प्रकाशक राजीव गुप्ता ने गलती के लिए क्षमा याचना की है। क्षमादान के साथ इस घटना पर पटाक्षेप कर दिया गया है। अध्यापक के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले बी.एड. और शिक्षाशास्त्री के प्रशिक्षुओं को यह इतिहास पढ़ाया जा रहा था। उन्होंने आगे कितने छात्रों को गलतियों का यह पुलिन्दा पढ़ाया है, यह सोचने का बिन्दु है। भ्रामक लेखन से जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति कैसे की जा सकती है यह भी विचारणीय विषय है। आर्य अधिकारियों द्वारा स्वयं भी इस दिशा में आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिएं।

आर्यों को आहत करनेवाली तीसरी घटना भी हरियाणा में ही घटित हुई है। वह यह है कि वर्षों से चला आ रहा महर्षि दयानन्द के जन्मदिन के उपलक्ष्य में होनेवाला राजकीय अवकाश वर्तमान सरकार ने समाप्त कर दिया है। जबकि अन्य महापुरुषों के अवकाश प्रचलित हैं। अवकाश घोषित होना एक श्रद्धा-सम्मान प्रदर्शित करने का विषय होता है जिसको वर्तमान सरकार ने त्याग दिया है, जो तरह- तरह के सन्देह उत्पन्न करता है। आर्यसमाजों, आर्यसभाओं और आर्यनेताओं ने अभी तक इस विषय में भी आवश्यक सक्रियता प्रदर्शित नहीं की है। आर्यसमाज के संगठनों, सभाओं और आर्यनेताओं का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे इन विषयों में हस्तक्षेप करें और सभी सम्बन्धितों से मिलकर आपत्तिजनक बिन्दुओं को सुलझवायें। जब आर्यनेता और दायित्वपूर्ण संगठन ही अपने संस्थापक के सम्मान की रक्षा में सक्रिय नहीं दिखेंगे तो उनका दायित्व के पद पर आसीन रहना ही व्यर्थ है। महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा, अजमेर उक्त उपेक्षा और पक्षपातपूर्ण तथा विकृतिपूर्ण घटनाओं की निन्दा करती है तथा यह माँग करती है कि हरियाणा सरकार महर्षि के जन्मदिन के अवकाश को पुन: लागू करे। केन्द्रीय शिक्षामन्त्री श्री धर्मेन्द्र जी प्रधान इस विषय को स्वयं देखें और इस पर आवश्यक कार्यवाही करें। यूजीसी अपने पाठ्यक्रम में उचित स्थान देकर महर्षि के सम्मान की रक्षा करे।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि त्रैतवाद दर्शन को उक्त में से अन्य किसी दार्शनिक ने प्रस्तुत नहीं किया है। यह महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत एकमात्र दर्शन है। अत: केवल उनके द्वारा प्रस्तुत वैदिक दर्शन का शिक्षक भी लाभ उठा सकेंगे तथा छात्र-छात्राओं को भी वैदिक दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

अग्नि सूक्त-१०

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रहा है। गत अंक में मृत्यु सूक्त का अन्तिम व्याख्यान प्रकाशित हुआ। आप सभी ने उक्त सूक्त को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा। आप सबकी इस वेद-जिज्ञासा को ध्यान में रखकर शीघ्र ही यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कर दिया जायेगा। इस अंक (मार्च प्रथम) से ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रारम्भ की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी ही कर रही हैं। -सम्पादक

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्।।

हमारा यह जो वेदज्ञान का प्रसंग है, इसके क्रम में हम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के तीसरे मन्त्र की चर्चा कर रहे हैं। हमने पीछे इस मन्त्र के प्रासंगिक अभिप्राय को समझने का यत्न किया था। हमने उस मन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द, स्वर के बारे में जाना। उसका ऋषि मधुच्छन्दा है, देवता अग्नि है, तथा छन्द गायत्री है और स्वर षड्ज है। इस तरह जानने से क्या होता है इसको हमने देखा। स्थान की दृष्टि से द्युलोक, पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक देखने पर हमें पता लगा कि अग्नि पृथ्वी स्थान का देवता है और पृथ्वी स्थान के देवता के रूप में जब अग्नि को देखते हैं तो पृथ्वी पर अग्नि से हम क्या पाते हैं, क्या पा सकते हैं, उसकी बात वेदमन्त्र कह रहा है। मन्त्र कहता है **अग्निना रयिमश्नवत्** अर्थात् इस संसार में जो ऐश्वर्य है उसको पाया जा सकता है। उसको पाना सहज है, सरल है, सम्भव है। लेकिन उसका आपको उपाय ढूँढना होगा, साधन ढूँढना होगा। वह किस प्रकार हमें प्राप्त हो सकता है। मन्त्र कहता है कि आप अग्नि के द्वारा ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे सामने दो विकल्प हैं। हम अग्नि से जड़ की चर्चा करना चाहते हैं या हम अग्नि से चेतन की चर्चा करना चाहते हैं। मान लीजिये पहले हम जड़ की चर्चा करना चाहते हैं। अग्नि यहाँ भौतिक है और भौतिक अग्नि भी व्यापक होता है, क्योंकि अग्नि जब परमेश्वर को कहते हो और अग्नि जब पृथ्वी स्थान की आग को कहते हो तो दोनों का एक नाम होने का कोई कारण तो होना चाहिये। बिना कारण के तो कोई बात कहेगा नहीं। दोनों के नाम का जो अर्थ है वह दोनों स्थानों पर घटित होगा। उसकी योग्यता, उसके गुण दोनों स्थानों पर पाये जायेंगे। अर्थात् वे गुण भौतिक अग्नि में भी होंगे, उसी प्रकार के गुण चेतन अग्नि में भी होंगे। भौतिक अग्नि ऊर्जा का प्रतीक है, बल का प्रतीक है, तेज का प्रतीक है, सामर्थ्य का प्रतीक है। यदि हम संसार में कोई भी सामर्थ्य पाना चाहते हैं तो हमारे अन्दर ऊर्जा होनी चाहिये, हमारे अन्दर अग्नि होनी चाहिए। अग्नि के अनेक रूप हैं। हमारी गति अग्नि के कारण होती है, हमारा तेज, हमारी प्रखरता भी अग्नि का रूप है और हमारी जो मजबूती है, दृढ़ता है, बल है वह भी अग्नि का रूप है। तो अग्नि सामर्थ्य का, बल का, ऊर्जा का प्रतीक है। उत्पत्ति स्थान का प्रतीक है।

वेद कहता है कि अग्नि से ऐश्वर्य को प्राप्त किया जाता है अर्थात् संसार में जो भी ऐश्वर्य है उसका गति से सम्बन्ध है, उसका जीवन से सम्बन्ध है। यदि मनुष्य में जीवन नहीं हो तो उसके अन्दर आग कहाँ से आयेगी। हम कहते हैं, इसके अन्दर कोई आग नहीं है, इसके अन्दर कोई तड़प नहीं है। किसी के लिए हम कहते हैं, यह तो आग है, इसके अन्दर बहुत ऊर्जा है। तो अग्नि ऊर्जा है, आग है। वेद कह रहा है कि इस अग्नि से आप अपने ऐश्वर्य को प्राप्त करो। अर्थात् आपके अन्दर ऊर्जा है तो आप ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हैं। ऐश्वर्य कितना भी हो, लेकिन आपके अन्दर सामर्थ्य न हो, ऊर्जा न हो तो आप

उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? वेद का सिद्धान्त है निराशा में नहीं जीना, हताशा में नहीं जीना, पराजय की भावना नहीं करना, उन्नति की, शिखर की बात करना, आशा की बात करना, सफलता की, जीवन की बात करना।

अग्नि और ऐश्वर्य के बीच में इतना सम्बन्ध है कि आपके अन्दर, आपके पास ऊर्जा है तो ऐश्वर्य आपसे दूर नहीं रह सकता। आपके पास जितना अधिक ऊर्जा का क्षेत्र है उतनी अधिक आपके ऐश्वर्य की, सफलता की सम्भावनायें है। इसलिए वेद ने उस शाश्वत सत्य की ओर हमारा दृष्टिकोण ले जाने का प्रयास किया कि आप अपने अन्दर आग पैदा करो, ऊर्जा पैदा करो। और इसमें एक विचित्र बात कही, ऐश्वर्य कैसा प्राप्त होता है? एक बार मिलकर समाप्त हो जानेवाला नहीं, क्योंकि सांसारिक धन आते-जाते रहते हैं। कुछ पुरुषार्थ किया, कुछ अनुकूल स्थिति बनी, ऐश्वर्य मिल गया। लेकिन यदि संयोग नहीं बना, पुरुषार्थ नहीं कर पाये तो वह समाप्त भी हो जाएगा। लेकिन यहाँ ऐसे ऐश्वर्य की बात की जा रही है, आप जितनी ऊर्जा अपने अन्दर रखेंगे, आपको निरन्तर उतना ऐश्वर्य प्राप्त होता रहेगा। ऐश्वर्य की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं है। आपका ऐश्वर्य कैसा होना चाहिए **'पोषमेव'** वह पुष्टि देनेवाला होना चाहिये, बढ़नेवाला होना चाहिए। अर्थात् आपका ऐश्वर्य आपने कमाया, आपने अपना धन कमाया और उस धन को आपने यदि आज ही खर्च कर लिया, आज ही आपके काम आ गया, तो पुष्टिकारक कहाँ हुआ? आपको वह धन बढ़ानेवाला होना चाहिए। अर्थात् आपने अपना धन कमाया और उस धन को आपने यदि आज ही खर्च कर लिया, आज ही आपके काम आ गया तो पुष्टिकारक कहाँ हुआ? आदमी धन को कैसे बढ़ाता है? आज आदमी के पास कुछ नहीं है, निर्धन है, कुछ धनवान् होता है, उसके पास धन आता है और धन अधिक आ जाता है तो वह बड़ा धनी बन जाता है। ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता है। जितना हम ऊर्जावान बनेंगे उतना ही हमारा ऐश्वर्य भी बढ़ेगा। वह ऐश्वर्य जो हमारे लिए लाभ में बदला है। इसलिये यहाँ उस ऐश्वर्य की बात की है- **पोषम्**। जो स्वयं भी बढ़ रहा है और मुझे भी बढ़ा रहा है। जो ऐश्वर्य पुष्टिकारक है, हमारे अन्दर स्वास्थ्य देनेवाला है, हमको ऊर्जा देनेवाला है, हमारी वृद्धि करनेवाला है।

मन्त्र कहता है, हम अग्नि से रयि को, धन को प्राप्त करते हैं। पोषम् इव और पुष्टिवाले धन को प्राप्त करते हैं। धन से हमको पुष्टि प्राप्त होती है और वह पुष्टि, वह ऐश्वर्य एकाध बार नहीं होता, वह पुष्टि थोड़े समय के लिए नहीं होती। वह ऐश्वर्य **दिवे-दिवे** मतलब अग्नि के द्वारा ऊर्जा के द्वारा जो ऐश्वर्य आप प्राप्त कर रहे हैं वह ऐश्वर्य दिन-प्रतिदिन पुष्टिकारक है। अर्थात् वह एक बार पुष्टिकारक नहीं है, आप उसको जब भी प्राप्त करेंगे, प्राप्त करना चाहेंगे तो वह आपके लिए सदा ही पुष्टि देनेवाला होगा। आपकी पुष्टि को बढ़ानेवाला होगा। वो धन के रूप में भी बढ़ेगा और आपकी इच्छा के रूप में, बल के रूप में भी बढ़ेगा। यहाँ धन की एक विशेषता बताई कि धन अग्नि से प्राप्त होता है, ऊर्जा से प्राप्त होता है, उत्साह से प्राप्त होता है, पुरुषार्थ से प्राप्त होता है, श्रम से प्राप्त होता है और वह ऐश्वर्य **'पोषम्'** पुष्टिकारक है, निरन्तर बढ़ानेवाला है और **'दिवे-दिवे'** दिन-प्रतिदिन बढ़ानेवाला है अर्थात् जब-जब हम उसका उपयोग करेंगे, उसका सान्निध्य लेंगे, उसको अपने पास रखेंगे तो हमारी उन्नति होगी। दिन-प्रतिदिन, सदा-सदा। इस धन की दो विशेषतायें और बता रहा है- **यशसम् वीरवत्तमम्**। हमारा धन यश देनेवाला हो। बड़ी रोचक बात है। अर्थात् धन बहुतों के पास है और बहुत बड़ी मात्रा में है और वह बड़ी मात्रा वाला धन **यशसम्** नहीं है। यशस्वी नहीं है, उसके द्वारा हमें यश नहीं प्राप्त हो रहा है, उसके द्वारा संकट प्राप्त हो रहे हैं। हमें वह धन परेशानी में डाल रहा है तो वह धन धन नहीं है। इसलिये हमें ऐसे धन की कामना करनी है जो **'यशसम्'** यशस्वी हो, यश देनेवाला हो। उस धन को प्राप्त करके हम समाज में, संस्था में, समुदाय में, मित्रों में, प्रशंसा के भागी बनें। वह हमारे पुरुषार्थ, बुद्धि, परोपकार आदि गुणों को अधिक व्यक्त करनेवाला होना चाहिये। हमें लोग यह न कहें कि यह चोरी से कमाया है, तस्करी से कमाया है कि झूठ बोल कर कमाया है, किसी को कष्ट देकर कमाया है। यह स्थिति नहीं होनी चाहिये। **यशसम्** वह धन हमारी यशस्विता का कारण बनना चाहिये। उसके साथ एक और बात कहता है, **वीरवत्तमम्** वह हमारे गुणों को बढ़ानेवाला होना

चाहिये। अर्थात् धन आये और हमारे गुण नष्ट हो जायें, ऐसा धन नहीं चाहिये। **वीरवत्तमम्** चाहिये, अत्यन्त वीरता को, ऐश्वर्यता को प्रदान करनेवाला होना चाहिये। उसके आने से हमारे अन्दर नम्रता, सुशीलता, अहंकारहीनता बढ़नी चाहिये। दोष नहीं आने चाहिये। वह हमारे अन्दर सामर्थ्य पैदा करनेवाला होना चाहिये। लोगों के पास धन होता है, देने की इच्छा नहीं होती, देने का सद्‌गुण, देने की शक्ति नहीं होती। तो हमारा धन दो तरह का होना चाहिये, **यशसम्** होना चाहिये और **वीरवत्तमम्** होना चाहिये। हमारा धन **यशसम्** कैसे होना चाहिये कि हमने उसे सन्मार्ग से कमाया है, सच्चे रास्ते से कमाया है, किसी को कष्ट देकर, किसी की हत्या करके किसी के साथ छल करके हमने उसे प्राप्त नहीं किया है। बल्कि हमारा धन बहुत पुरुषार्थ से, बहुत ईमानदारी से, नियमानुसार अपनी योग्यता से प्राप्त किया है। यदि धन ऐसा नहीं होगा, तो हमारे अपवाद का कारण बनेगा, हमें जेल भेजने का कारण बनेगा, हमारे लिये बदनामी, निन्दा का कारण बनेगा, हमारे लिये कष्ट का कारण बनेगा। इसलिये यहाँ कहा गया है कि धन आप कमाओ, अवश्य कमाओ किन्तु उसके अन्दर यशस्विता होनी चाहिये, यशवाला धन होना चाहिये और वह धन **वीरवत्तमम्** श्रेष्ठता का प्रतिपादक होना चाहिये, श्रेष्ठता प्राप्त करानेवाला होना चाहिये।

जब इस तरह से आप मन्त्र का अर्थ करेंगे तो **अग्निना रयिमश्नवत्** अग्नि से ऐश्वर्य को हम प्राप्त करते हैं। अग्नि से ऐश्वर्य प्राप्त होता है, एक सामान्य बात है। हम अग्नि से ऐश्वर्य प्राप्त करें यह निर्देश भी ठीक है। लेकिन आप कैसे भी धन प्राप्त कर लो और आपके कार्य की श्रेष्ठता हो जाएगी, यह नहीं है। उनके साथ एक नियम भी रखा है, एक शर्त भी रखी है कि इस ऊर्जा से प्राप्त होनेवाला जो धन है वह ऊर्जा के दुरुपयोग को बतानेवाला न हो, दुरुपयोग का कारण न हो, बल्कि हमारे लिये यश को देनेवाला हो, वीरता को देनेवाला हो। तो जब हम सामान्य रूप से इन मन्त्रों के साथ इन विशेषणों को जोड़कर देखते हैं तब हमें पता लगता है कि संसार का ऐश्वर्य जो है व उसकी सफलता में, उत्साह में, बल में, स्फूर्ति में, तेज में निहित है। उसको हम कैसे प्रकट करते हैं अधिक बल पाकर, अधिक जन-धन पाकर हम उसकी अधिकता को अपने अन्दर प्रकाशित करते हैं। इस तरह से इस मन्त्र में समझाया गया कि यह सूक्त जिसे हम अग्नि सूक्त कह रहे हैं, उसमें अग्नि की एक विशेषता बता रहे हैं कि अग्नि से हम ऐश्वर्य की, धन की प्राप्ति करेंगे और ऐसे धन की प्राप्ति करेंगे जो हमारे लिये निन्दा का कारण नहीं होगा, जो किसी के शोषण का कारण नहीं होगा, किसी के दुःख का कारण नहीं होगा, बल्कि हम ऐसा धन प्राप्त करेंगे जो बढ़नेवाला होगा, दिन-प्रतिदिन बढ़ने वाला होगा, यश देनेवाला होगा और बल देनेवाला होगा, ऐसे धन को हम प्राप्त करें।

आर्ष ग्रन्थों का पठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

आनन्द

जिस परमात्मा का यह 'ओ३म्' नाम है उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ ये हमारे शरीर, मन और आत्मा का विविध दुःख जोकि अपने [से] दूसरे से होता है, नष्ट हो जावे और हम लोग प्राप्ति से एक-दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सब को आनन्द में रखें।

संस्कार विधि

कुछ तड़प–कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

संन्यासी हों तो ऐसे– 'तड़प-झड़प' में एक पिछले अंक में बताया जा चुका है कि भारत के अंग्रेजी राज के इतिहास में गोराशाही ने सबसे पहले जिस भारतीय महापुरुष के व्याख्यान पर रोक लगाई वह महर्षि दयानन्द थे। यह घटना सन् १८७९ की है। इसका प्रेस में विरोध हुआ तो यह प्रतिबन्ध हटाना पड़ा। आज काशी में इस घटना को कोई आर्यसमाजी तो जानता ही होगा और किसी बड़े-छोटे लीडर को तो भारतीय इतिहास की इस घटना का कतई ज्ञान नहीं होगा। नेता लोग जनमत के दमन की इस पहली घटना को जब जानते ही नहीं तो चर्चा भी क्या करें?

रॉलेट एक्ट में एक संन्यासी को फाँसी दण्ड– एक आर्य संन्यासी ने रॉलेट एक्ट के दिनों में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर एक सभा में लैक्चर दे दिया। ओ ड्वायर (डायर) के Reign of Terror (आतंक के राज्य) में देशवासियों को एकता का सन्देश देना भी तब अपराध था। डायर ओ ड्वायर के डर को शब्दों में कौन बता सकता है। उस आर्यसंन्यासी को बन्दी बनाकर कारागार में बन्द करके केस चलाकर फाँसी-दण्ड सुनाया गया। जब जनता में इससे रोष फैला तो महात्मा जी को दो वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड सुनाया गया।

पंजाब का एक भी राजनीतिक नेता उस महान् विद्वान् साधु का नाम तक नहीं जानता। वह थे अमृतसर जनपद में ही जन्मे स्वामी अनुभवानन्द जी। देश के एक यशस्वी तपस्वी नेता डॉ. सत्यपाल जी ने अपनी जेलबीती में उस स्वाधीनता सेनानी का उल्लेख किया है। देश की नई पीढ़ी के सामने ऐसे बलिदानी पुरुषों का इतिहास जब रखा ही नहीं जाता तो फिर दिलजले समर्पित जनसेवक देश को कैसे मिल सकते हैं?

जेल में बिना बिस्तर के, बिना वस्त्र के– वीर भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव व उनके साथियों की भूख-हड़ताल के समर्थन में कांग्रेस की एक विशाल सभा की अध्यक्षता करते हुये एक निडर देशभक्त संन्यासी ने पहली बार सरकार के सामने यह माँग रख दी कि सरकार हमारे राजनीतिक बन्दियों से वही व्यवहार करे जो एक सरकार दूसरी सरकार के युद्धबन्दियों [Prisoners of War] के साथ करती है। सरकार उस महाप्रतापी संन्यासी के इस सिंहनाद से हिल गई। कुछ ही दिन में उस निर्भीक तेजस्वी संन्यासी को कारागार में ठूँस दिया गया।

देश की तो छोड़िये पंजाब का एक भी लीडर आज उस संन्यासी महात्मा का नाम तक नहीं जानता। कारागार में तो कारागार के वस्त्र ही पहनने पड़ेंगे। ऐसा उन्हें कहा गया। आपने कहा, ''साधु दूसरे वस्त्र नहीं पहन सकता।'' ग्रीष्म ऋतु में प्रायः अपनी कालकोठरी में आप कोपीन लगाये पड़े रहते थे। महीनों ऐसे ही जेल में बिता दिये।

जेलवालों ने बिस्तर दिया तो कहा जेल का बिस्तर नहीं लेंगे। उन्होंने कहा, किसी भक्त का नाम बतायें उससे आपके लिये बिस्तर ला देते हैं। आपने एक-एक करके तीन नाम लिये १. महाशय कृष्ण, २. दीवान बद्रीदास और ३. चौधरी छोटूराम। जेलवालों ने कहा, ''ये तो बहुत बड़े नेता हैं। इनके घर से हम नहीं ला सकते।''

लम्बे समय तक वह संन्यासी अन्धेरी कालकोठरी में ग्रीष्म काल में कोपीन लगाकर ही सो जाते थे।

उस महापुरुष का नाम था स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज। देश के स्वाधीन होने पर वेतनभोगी हमारे इतिहास-लेखकों ने शहीद भगतसिंह आदि पर लिखते हुए उन क्रान्तिकारी वीरों के लिये असह्य यातनायें झेलनेवाले संन्यासी का कभी नाम ही नहीं लिखा। ऐसे पंगू अधूरे इतिहास को आप क्या कहेंगे? आर्यसमाज ने भी देशहित में इतिहास की इतनी बड़ी घटना की उपेक्षा को चुनौती मानकर आज से पहले इसे इतिहास में स्थान दिलाने का यत्न कभी नहीं किया।

मियाँजी का शीर्षासन– श्री डॉ. वेदपाल जी ने 'पुरोहितम्-अर्थ विचार' शीर्षक से जुलाई प्रथम २०२१ के अंक में एक मौलिक, खोजपूर्ण तथा प्रमाणों से परिपूर्ण लेख दिया है। किसी मौलाना ने एक वीडियो में वेद की प्रसिद्ध ऋचा अग्निमीळे पर महर्षि के वेदभाष्य पर वार

प्रहार किया है। डॉ. वेदपाल जी ने इस लेख में मियाँ जी का ऐसा युक्तियुक्त सप्रमाण उत्तर दिया है कि लेखक की लेखनी को चूम लेने को जी करता है। आक्षेपक मियाँ डॉ. वेदपाल जी के लेख का मूल्याङ्कन क्या करेगा? वह तो हमारे गम्भीर विद्वान् के लेख को समझ ही नहीं सकता। मियाँ जी को तो इस्लाम की भी सन्तोषजनक जानकारी नहीं तो वह वैदिक साहित्य को क्या समझ सकता है।

मौलाना ने वेद पर, ऋषि पर प्रहार करने का चाव भले ही पूरा कर लिया है वास्तव में उसने इस्लाम को शीर्षासन करवा दिया है। मौलाना इतना तो अवश्य जानता होगा कि अल्लाह '**कादरे मुतलिक**' है अर्थात् जो चाहे कर सकता है। ऋषि दयानन्द पहले विचारक थे जिन्होंने इस्लाम को भूल-सुधार की सीख देते हुये कहा कि ईश्वर अपने गुण, कर्म और स्वभाव के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। इस्लाम में बहुतों को यह सीख समझ में आ गई। सर सैयद अहमद ने स्वीकार किया है, ''**खुदा ख़ुद ऐसा हमारे पीछे पड़ा है कि यदि हम छोड़ना भी चाहें तो नहीं छूटता।**[१]''

डॉ. जेलानी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अल्लाह की आदत में' लिखते हैं, ''अल्लाह की आदत कतई नहीं बदलती।[२]'' क्या यह कथन ऋषि के उपरोक्त विचार का अनुवाद है या नहीं?

अल्लाह ख़ालिक है, पालक है, मालिक है, आदिल है। कब से? इस्लाम का उत्तर है सदा से तो फिर जीव भी सदा से अनादि मानने पड़ेंगे अन्यथा वह न्याय किसे देता था? पालन किसका करता था? देता किसको था? कुरान में इसका उल्लेख न सही। ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य और सत्यार्थप्रकाश इस्लाम को स्वीकार्य हो गये। आप खुलकर स्वीकार कर रहे हैं कि इस्लाम वेद के रंग में रंगा गया है। ''धर्म हर युग में एक था।[३]''

कभी इस्लामी मौलाना कयामत के दिन न्याय की बात करते थे अब अल्लाह न्याय के आसन पर बैठा हर घड़ी निर्णय करके न्याय देता जाता है।[४] कभी पुनर्जन्म को मानना कुफ्र माना जाता था। रसूल का कथन दोहरा-दोहरा कर सुनाया जाता है, ''अल्लाह की राह में शहीद होकर फिर जन्म लूँ, फिर बलिदान दूँ, फिर नया जन्म मिले और प्राण वारूँ।[५]'' क्यों जी यह पुनर्जन्म में विश्वास है या नहीं? इस्लाम ऋषि की कृपा से वैदिक धर्म की चौखट पर पहुँच चुका है।

पहले सातवें आसमान पर अल्लाह था, अब हाज़िर नाज़िर मानते हुए उसे 'महीते कुल'[६] सबको घेरनेवाला स्वीकार करने लगे या नहीं? जब अल्लाह सदा से दया करता चला आ रहा है और न्याय सदा से करता आ रहा है तो न्याय व दया पानेवाले भी अनादि काल से मानने पड़ेंगे। एक मौलाना का कथन है कि यदि ऐसा न मानेंगे तो कुरान वर्णित अल्लाह के सब ९९ नाम निरर्थक मानने पड़ेंगे।

'पुरोहितम्' के ऋषि के अर्थों पर प्रहार करनेवाला मियाँ ऐसा करने से पहले 'एक इस्लाम' पुस्तक में ऋषि के वेदभाष्य की महिमा पढ़कर कुछ लिखता तो इससे इस्लाम की कुछ सेवा होती। इस्लाम के 'फ़रिश्ते' बदल गये। अब फ़रिश्ते खुलकर वेद के देवता अर्थात् गुणी, विद्वान्, परोपकारी बन गये। अल्लाह कभी रसूल की सिफ़ारिश पर पाप क्षमा करके पापियों को बहिश्त में भेजा करता था। अब इस्लाम में ऋषि की घोषणा की गूञ्ज सुनाई दे रही है, ''पाप को जीवन से निकाल दीजिये और दु:ख का क्रम समाप्त हो जावेगा।[७]'' मियाँ जी ही अब बतायें कि इस्लाम का यह वैदिक रूप-रंग ऋषि दयानन्द की कृपा का फल है या नहीं?

ऋषि पर प्रहार करनेवाले मियाँ जी डॉ. गुलाम जेलानी के इस प्रश्न को पढ़-सुनकर क्या उत्तर देते हैं यह हम भी जानना चाहते हैं। बहिश्त में हर मोमिन को ७२-७२ हूरें मिलेंगी। ऐसा माना जाता है, परन्तु मोमिनात (पवित्र धार्मिक स्त्रियाँ) को बहिश्त में क्या मिलेगा? इस पर भी चुप्पी तोड़ी जावे।

डॉ. वेदपाल जी के लेख से मियाँजी की सन्तुष्टि हो गई होगी। तथ्य यह है कि संसार के अवैदिक मतों में से इस्लाम ने ही ऋषि दयानन्द के साहित्य, उपदेश का सर्वाधिक लाभ उठाया है। इसका प्रमाण सर सैयद के साहित्य में सपने में मौलाना के एक हाथ में अपनी दाढ़ी और दूसरे हाथ से अपने ही गाल पर कसकर थप्पड़ मारनेवाली कहानी है। इतना सुधार-उपकार ऋषि ने कर दिया। मौलाना यह सब जानते हैं।

भेदभाव की दीवारें ढह कर रहेंगी। इस्लाम के वैदिक रंग में ही विश्व-कल्याण है। "**कर्मों के फल टल नहीं सकते।**"[८] इस जोशीले जयकारे को मियाँजी कब तक रोकेंगे? ऋषि दयानन्द ने प्रभु प्रदत्त ज्ञान वेद का यह मधुर फल चखा दिया है। इसका लाभ लीजिये। "**अल्लाह का सबसे बड़ा चमत्कार सृष्टि-रचना है।**"[९] अब तक इस्लाम सृष्टि-नियम विरुद्ध जिन कहानियों को चमत्कार (Miracles) मानकर अन्धेरे में भटकता रहा। उनसे इस्लाम का पिण्ड छूट गया। देखो! देखो परमात्मा के काव्य को (रचना को) जो न घिसता है न मिटता है। सृष्टि उसकी रचना और वेद उसकी रचना है। ऋषि के इस प्रसाद को स्वीकार कर इस्लाम सब अन्धविश्वासों व सृष्टि-नियम विरुद्ध विचारों से मुक्त हो। इसी में सबका भला है।

महाविद्वान् पं. आर्यमुनि के जीवन की दो घटनायें- इन दिनों उठते-बैठते-सोते जागते मुझे आर्यसमाज के इतिहास में छूट गई महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष घटनायें ही सूझती हैं। महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि जी आर्यसमाज के प्रकाण्ड विद्वानों में से एक थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कवि थे, शास्त्रार्थ-महारथी, वेदज्ञ, आर्ष साहित्य के अधिकारी विद्वान् तो थे ही, परन्तु वे पहलवान भी थे। यह पढ़कर सब पाठक दंग रह जावेंगे। मुझसे प्रमाण मांगेंगे। प्रमाण के बिना लिखना मेरे स्वभाव में ही नहीं है। मैं अपने स्रोत तथा जानकारी देनेवाले का उल्लेख गौरव से करता हूँ। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आर्यसमाज में इस कोटि के अद्वितीय इतिहासकार थे। पं. इन्द्रजी ने उनके अथाह ज्ञान का अवश्य लाभ उठाया है। आचार्य प्रियव्रत जी, महाशय कृष्ण, स्वामी श्री वेदानन्द जी उनको उच्चकोटि का इतिहासकार मानते थे।

स्वामीजी लिखते हैं कि आर्यमुनि जी शरीर से दुर्बल थे। गर्म कपड़े पहना करते थे, वह भी कश्मीरी पट्टू के ही। पण्डितजी को कुश्ती का बड़ा शौक था। पाठक सोचेंगे कि दुर्बलकाय और फिर कुश्ती के रसिक! जी हाँ, श्री स्वामी जी महाराज की साक्षी से मैं यथार्थ इतिहास का ज्ञान परोस रहा हूँ।

एक बार एक युवक ने उन्हें पूछा कि वे बलहीन शरीर से कुश्ती की बात क्यों करते हैं? उन्हें कुश्तियों के दृष्टान्त देना, चर्चा करना शोभा नहीं देता। आप बुद्धि की, ज्ञान की ही बातें सुनाया करें।

पण्डितजी ने उत्तर दिया कुश्ती में भी बुद्धि-बल प्रधान होता है। उस युवक ने उन्हें चुनौती दे दी, "आप मेरे साथ कुश्ती कर लें।" पण्डितजी ने झट उसकी चुनौती स्वीकार कर ली। सब ने रोका भी, परन्तु दोनों नहीं माने। देखते ही देखते बज़्म (सभा) से रज़्म (युद्ध) स्थल हो गया। बातचीत से अखाड़ा हो गया। लोग देखकर दंग रह गये कि पण्डित जी ने पाँच मिनट के भीतर उस युवक को चित्त कर दिया और उसकी छाती पर बैठकर कहा, "देखो, ऐसे पछाड़ा करते हैं।"

महाराज हीरासिंह के शब्दों में पण्डित जी- महाराजा हीरासिंह नाभावाले समय-समय पर आर्यविद्वानों का प्रचार करवाते व सुनते भी थे। एक बार विधवा-विवाह पर नाभा में पं. आर्यमुनि जी का सनातनधर्मियों से महाराजा हीरासिंह की अध्यक्षता में बड़ा निर्णायक शास्त्रार्थ हुआ। उस शास्त्रार्थ में महाराजा ने पं. आर्यमुनि जी को विजयी घोषित किया। उस समय महाराजा ने पण्डितजी को सम्बोधित करके कहा था, "मैंने सुना है बी.ए., एम.ए. बड़े झगड़ालू होते हैं पर तू भी किसी से कम नहीं।" भाव यह था कि वकील अपना पक्ष सिद्ध करने में पटु होते हैं, परन्तु आप भी उन्हीं के समान ही हैं।

इसी प्रकार आर्यसमाज के इतिहास में आर्यपत्रों के संघर्ष और आर्य पत्रकारों के बलिदान पर इतिहास में कहीं-कहीं संकेत तो किया गया है, परन्तु इतिहास को दिशा देनेवाली सामग्री कोई विशेष नहीं दी गई। इस कमी को अब दूर किया जावेगा। पाठक इस सम्बन्ध में अनुप्राणित करनेवाली पर्याप्त सामग्री अब इतिहास में पायेंगे। यहाँ केवल एक ऐसी घटना दी जाती है। आर्यसमाज के विरोधियों में से किसी के इतिहास से ऐसी दूसरी घटना न मिलेगी।

'पिंजरेवाला शेर दहाड़ा'- इतिहास के इस स्वर्णिम पृष्ठ को मैंने गद्य व पद्य दोनों में लिखा है। यह घटना दक्षिण भारत के आर्यसमाज के रक्तरंजित इतिहास की है। जब पहली बार मैंने यह घटना पत्रों में दी तो आन्ध्र के आर्य भाई इसे पढ़कर हैरान रह गये कि यह घटना तो न कभी

सुनी और न पढ़ी, जिज्ञासु जी ने कहाँ से निकाल दी? हैदराबाद के यशस्वी आर्यमिशनरी श्री पं. प्रियदत्त जी के मन में आया कि जिज्ञासु जी तो सदैव प्रामाणिक सामग्री देते हैं। इस बार प्रमाण साथ दिया नहीं।

वह हैदराबाद से अबोहर इसका प्रमाण पूछने को चल पड़े। पहले दिल्ली पहुँचे। अभी वह दिल्ली में ही थे कि मैं भी दिल्ली पहुँच गया। भेंट होते ही श्री पण्डित जी ने इसका प्रमाण पूछ लिया। मैंने उनकी सन्तुष्टि करवा दी, फिर तो हैदराबाद में ही पण्डित विजयवीर जी ने मेरे लेख की पूरी पुष्टि कर दी।

'पिंजरेवाला शेर दहाड़ा' घटना क्या है? श्री पं. नरेन्द्र जी हैदराबाद से प्रकाशित होनेवाले आर्यसमाज के प्रथम निर्भीक पत्र 'वैदिक आदर्श' साप्ताहिक का सम्पादन किया करते थे। मात्र ढाई-तीन वर्ष में इस पत्र ने जन-जागरण का ऐसा इतिहास रचा कि निज़ामशाही की नींद उड़ा दी। देशभर में किसी भी क्रान्तिकारी पत्र को इतने स्वल्पकाल में इतना यश प्राप्त नहीं हो सका। निज़ामशाही ने पं. नरेन्द्र जी को उजाड़ जंगल में शेर-चीतों के मध्य एक पिंजरा बनवाकर बन्दी बनाकर रख दिया। साथी-संगी निर्जन वन में कौन हो सकता था? कोई बातचीत करनेवाला मनुष्य भी आस-पास नहीं था। देखभाल करनेवाला, रिपोर्ट देनेवाला एक सरकारी दूत या कर्मचारी अवश्य उधर रहता था। उससे भी लोगों ने यह घटना सुनी। एक दिन उस तंग पिंजरे में पण्डित जी को गहरी नींद आ गई। जंगल में विचरण करनेवाले एक सिंह को मनुष्य की गन्ध आ गई। वह पिंजरे के पास पहुँचा तो पण्डित जी का पाँव पिंजरे की सलाखों से लगा हुआ थ। शेर उसे चाटने लगा। झट से पण्डित जी ने पैर पीछे खींच लिया। जंगल का सिंह खीजकर दहाड़ने लगा। उधर भीतर का बन्दी उससे दुगने जोश से दहाड़ने लगा। लम्बी घटना तथा लम्बी कविता न देकर कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं-

लगा चाटने पैर द्वार से, जाग उठा भीतर का शेर।
आँख खोलकर लगा देखने, यह क्या होने लगा अन्धेर!!
क्या मेरा तू कर सकता है? अय जंगल के राजा बोल।
बाहर भीतर रहूँ कहीं भी, खोलूँ हर ज़ालिम की पोल।।
भाग यहाँ से देर न कर तू, व्यर्थ यहाँ चिंघाड़ नहीं।
जंगल में रहना जो चाहे, मेरे साथ बिगाड़ नहीं।।
बोला झक्की वन का राजा, यह कैसा नर नाहर है।
नहीं जानता डरना दबना भीतर है या बाहर है।।
वन राजा को आँख दिखाता, जन राजा को यह ललकारे।
पिंजरे में डाला है जिसको, बाहर भीतर यह हुंकारे।।

इतिहासकार और इतिहासप्रेमी जान लें कि आधुनिककाल में पूरे दक्षिण भारत में जन-अधिकारों तथा स्वराज्य-संग्राम में दक्षिण के केवल एक ही नेता को एक छोटे से तंग पिंजरे में लम्बे समय तक बन्दी बनाकर रखा गया और वह था आर्यसमाज का प्रतापी बलिदानी नेता पं. नरेन्द्र। ठीक है कि उनकी चर्चा तो इतिहास में है, परन्तु इस घटना-

'पिंजरेवाला शेर दहाड़ा'

के बिना इतिहास सर्वथा अधूरा माना जावेगा।

मैं वही नरेन्द्र हूँ- श्री पं. नरेन्द्र जी की देश व समाज के लिये एक और देन, एक कुर्बानी का उल्लेख करके इस लेख को समाप्त किया जावेगा। जब पीड़ित दबी कुचली हैदराबाद की प्रजा के लिये श्री पं. नरेन्द्र जी भरी जवानी में संघर्ष कर रहे थे तो उनकी बिरादरी के चाटुकार कायस्थ लोगों ने हुज़ूर फैज़ गंजूर, पुरनूर निज़ाम उस्मान का नमकहराम, ग़द्दार घोषित करके पण्डितजी को बिरादरी से बहिष्कृत घोषित कर दिया। पण्डित जी यह प्रसाद पाकर कुछ बोले नहीं। सर्वथा शान्त व मौन रहे।

समय आया, हैदराबाद का भारत में विलय हो गया। तब हैदराबाद को भारत का अभिन्न अंग बनाने के लिये पण्डित जी जननायक के रूप में कारागार से छोड़े गये। राज्य के ग्राम-ग्राम और घर-घर में पण्डित जी की सतत साधना की चर्चा और धूम थी।

हैदराबाद के भारत में विलय के थोड़ा समय पश्चात् कानपुर में अखिल भारतीय कायस्थ महासम्मेलन आयोजित किया गया। अब उन्हीं कायस्थों ने जिन्होंने उन्हें नमकहराम और ग़द्दार की उपाधि दी थी उन्होंने सर्वसम्मति से पण्डित जी को अपने अखिल भारतीय सम्मेलन का अध्यक्ष चुनकर

कानपुर में प्रधान पद को सुशोभित करने का निमन्त्रण दिया।

निमन्त्रण पाकर उस सम्मान को ठुकराते हुये आपने उन्हें लिखा मैं वही नरेन्द्र हूँ जिसे आपने ग़द्दार व नमकहराम घोषित किया था। मैं तब भी सिर से पाँव तक ऋषि दयानन्द के मिशन के लिये समर्पित था। मेरा सर्वस्व आज भी ऋषि-मिशन है। पूज्य पण्डितजी के मुख से लेखक ने यह इतिहास सुना था। जाति-पाँति की ऐनक से सब कुछ देखनेवाले इस इतिहास से कुछ सीखेंगे क्या? हमीं को इस घटना के अनावरण करने का गौरव प्राप्त रहा है।

टिप्पणियाँ-

१. द्रष्टव्य 'हयाते जावेद' दूसरा संस्करण सन् १९०४ पृष्ठ ७८२

२. 'अल्लाह की आदत' पृष्ठ ५९ देखें।

३. द्रष्टव्य 'अल्लाह की आदत' पृष्ठ २५९ देखिये वही पृष्ठ २४

४. द्रष्टव्य वही पृष्ठ ५५

६. 'लुग़ाते किशोरी फारसी' पृष्ठ ४४२

७. द्रष्टव्य 'अल्लाह की आदत' पृष्ठ १३१

८. द्रष्टव्य 'दो कुरान' पृष्ठ ३१८

९. द्रष्टव्य 'दो कुरान' पृष्ठ ३२२

-वेद सदन, अबोहर

दयानन्दयतिवरो विजयते

ओमप्रकाश ठाकुर

हित्वाऽखिलभौतिकसुखजातं जननीवात्सल्यं प्रियतातं,
वेत्तुं संसृतिचक्ररहस्यं बाधानां संघं विगणयते।
दयानन्दयतिवरो विजयते।

देशं पराधीनमथ दलितं जनवर्गं निर्धनताऽऽकुलितं
वीक्ष्य रिपूणां कुटिलं जालं भीमरणे स्वं यो योजयते।
दयानन्द...

निराकृत्य दृढमूला रूढी: प्रबलतर्कजालै: शास्त्रीयै:
दिशि दिशि जन चैतन्यमावहन् भारताम्बरे भानुरूदयते।
दयानन्द...

वेदालोकैस्तिमिर मुदस्यन् जगति ततं पाषण्डमपास्यन्
एकेश्वरपूजां प्रचारयन् सत्यपथं सर्वान् दर्शयते।
दयानन्द...

भ्रमोच्छेदनार्थे सत्यार्थ: तेन जगत्यखिले प्रकाशित:
तत्परिशीलनधृतवैशिष्ट्य: क: कुपथे गन्तुं कामयते
दयानन्द...

नारीणां शिक्षा प्रचारिता दीनेभ्यो हृदि दया धारिता
जनजागृतये आर्यसमाज: नित्यनूतनामुन्नतिमयते।
दयानन्द...

आर्षी सन्ध्याहवनपद्धतिं वेदाध्ययनमथो सुसंगति
अन्यायप्रतिरोधनकार्य दिशन् जनानार्यानुन्नयते।
दयानन्द...

गणिता तेन न काचिद्भीति: परिमुक्ता नो सत्या नीति:
विषमपि पीत्वा सुधाप्रवर्षी अद्भुतकर्म जगति धारयते।
दयानन्द...

को गणयेदुपकृतीस्तदीया या विदधेऽसो परमदयालु:
तच्चरित्र-महिमाऽतिमहीयान् क्षमाधनो निजहन्तरि दयते।
दयानन्द...

आस्थावानीश्वरविश्वासी गरुवचनार्थेऽर्पितसर्वेस्व:
योगी यतचित्त: स्वप्राणान् जयतु विभोरिच्छेत्यर्पयते।
दयानन्दयतिवरो विजयते।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।
-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

ऐतिहासिक कलम से....

प्रभु कैसा है ?

-पं. चमूपति

परमात्मा को जो मानते हैं वे भी यह नहीं जानते कि वह कैसा है? सभी ने अपनी बुद्धि के अनुसार उसकी कल्पना कर ली है। प्रस्तुत निबन्ध में विद्वान् लेखक ने 'उस' के सत्य स्वरूप का वर्णन कर हमारा मार्गदर्शन किया यदि हम जान लें तो इस जीवन में और जानने को फिर क्या शेष रहता है? -सम्पादक

विश्वात्मा

आत्मा और परमात्मा का विचार आपस में इतना मिला हुआ है कि शास्त्रों में इन दोनों की विवेचना साथ-साथ की गई है। कई स्थलों पर यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि यहाँ आत्मा का वर्णन है या परमात्मा का? प्रसिद्ध लोकोक्ति है- यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। जैसे शरीर में चेतनता देखकर उसमें किसी आत्मसत्ता का विचार उठता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में किसी नियामक व्यवस्थापक शक्ति का भान पाकर परमात्मा की सत्ता का अनुमान होता है।

परमात्मा जीव नहीं - विश्व का आत्मा (परमात्मा) इन शरीरियों में से एक नहीं हो सकता, क्योंकि शरीरी बहुत हैं और इनकी शक्ति सीमाबद्ध है। ये न तो सारे जगत् में व्यापक हैं, न इनका ज्ञान ही पूरा है। न ये बारी-बारी से शासन कर सकते हैं और न समूह रूप से शासक हो सकते हैं। ब्रह्माण्ड की व्यवस्था स्थिर है, वह व्यवस्थापक की स्थिरता चाहती है। यदि मुक्तों का शासन माना जाए तो ये बढ़ते-घटते रहते हैं। बन्धनावस्था से मुक्तावस्था में भोग का परिवर्तन होता है, क्योंकि वहाँ आनन्द ही आनन्द मिलता है, परन्तु स्वरूप नहीं बदलता कि अल्पशक्ति, सर्वशक्ति हो जाये। इसलिये आत्मा किसी अवस्था में परमात्मा नहीं हो सकता। वेद ने आत्मा के विषय में कहा है-

अथः परेण पर एना वरेण। ऋ. ०१.१६४, १७, १८

जीव की सूक्ष्मता

अर्थ- इस अवर (प्रतीयमान् जगत्) से बड़ा है, उस बड़े (परमात्मा) से छोटा है। पर सूक्ष्म को भी कहते हैं (जो प्रतीति से परे हो) प्रमाण के लिए उपनिषद् का यह मन्त्र देखो-

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।। उपनिषद्

ऋषि दयानन्द का यह कथन कि परमात्मा आत्मा से और आत्मा प्रकृति से अधिक सूक्ष्म है, इसी वैदिक विचार पर आश्रित है।

परमात्मा की सिद्धि : जगत् का प्रवर्तक (Cosmological Argument)

परमात्मा की सिद्धि की जो युक्तियाँ आधुनिक तथा पुरातन तर्क में प्रयोग में लाई गई हैं उनका बीज वेद में है। संसार को देखकर पहला प्रश्न यह होता है कि इसका विकास कैसे होता है? विकास में नियम है, निश्चय है। सम्पूर्ण जगत् की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक हुई प्रतीत होती है। इस विषय का विशेष विचार 'उत्पत्ति' प्रकरण में करेंगे। यह बुद्धि प्रकृति की नहीं और जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, किसी आत्मा या आत्मसमूह की भी नहीं। विभु आत्मा परमात्मा की ही है।।

पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि।

यजु. ३१.४

उस चतुष्पाद पुरुष का एकपाद (बहिःप्रज्ञ) इस संसार में प्रकट हुआ। उससे चेतन अचेतन सारा जगत् प्रवृत्त हुआ।

आर्य धर्म परमात्मा को जगत् का निमित्त कारण मानता है, उपादान नहीं। उपादान मानने से चेतन से अचेतन और अचेतन से चेतन विकसित होने की समस्या का कोई सुलझाव नहीं हो सकता। इस अंश में हमारी प्रवृत्ति की युक्ति पश्चिमीय युक्ति से, जो क्रिश्चियन मत पर आश्रित है, भिन्न है। पाश्चात्य तर्क यहाँ ठहर जाता है। हमारी यही युक्ति आगे चलती है।

धारक - प्रवृत्ति के पश्चात् धृति का प्रश्न है। संसार के विविध पदार्थ एक-दूसरे की आकर्षण यदि शक्तियों से स्थिर है, परन्तु यह आकर्षण भी तो बुद्धिपूर्वक कार्य कर रहा है। सूर्य ने पृथ्वी को और पृथ्वी ने सूर्य को आकर्षण करना किसी की नियामकता से स्वीकार किया है। इनमें यह धर्म कैसे आया? इस धर्म का संकेत ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी की ओर है। वेद कहता है-

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत्।।

अथर्व. १०.८.२

अर्थ- धारणकर्त्ता परमात्मा में आकाश और पृथ्वी (सूक्ष्मतम भूत आकाश और स्थूलतम भूत पृथ्वी का नाम निर्देश कर सारे भूतों की ओर संकेत है) अलग-अलग थमे हुए खड़े हैं। उसी धारणकर्त्ता में प्राण लेने और आँख झपकाने वाला आत्मवान् जगत् है। अर्थात् चेतन अचेतन का आधार प्रभु है।

निवर्त्तक - जहाँ प्रवृत्ति है, धृति है, वहाँ निवृत्ति भी है। प्रत्येक पदार्थ अपने मूल से परिणाम पाकर कार्यरूप धारण करता है और उससे पीछे फिर उसी कारण में लीन हो जाता है। जैसे पानी से बादल और बादल से फिर पानी बनता है। यह चक्र जैसे अलग-अलग पिण्डों में देखने में आता है, ऐसे ही ब्रह्माण्ड की मर्यादा में भी दृष्टिगोचर होता है। कम से कम इसका अनुमान इसी प्रकार हो सकता है। यह क्षय या निवृत्ति भी उसी व्यापक वृद्धि के अधीन है।

कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः।

अथर्व. १९.५४.१

अर्थ- संख्याकर्त्ता परमात्मा से सृष्टिकाल में सूर्य उत्पन्न होता है और प्रलयकाल में उसी में लीन हो जाता है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति दो विरोधी धर्म हैं। इनका समय और मर्यादापूर्वक व्यवहार में आना जड़ प्रकृति द्वारा असम्भव है। प्रकृति का स्वतन्त्र धर्म या प्रवृत्ति ही हो सकती है या निवृत्ति। संसार स्वतन्त्र हो तो उसकी गति यान्त्रिक (Mechanical) होनी चाहिए, अर्थात् वह बनता जाए या बिगड़ता। या सृष्टि ही सृष्टि होती जाए या प्रलय ही प्रलय हो। सृष्टि होते-होते प्रलय और प्रलय होते-होते सृष्टि की प्रवृत्ति कौन करता है? कोई नियामक शक्ति ही। वह नियामक चेतन होना चाहिए और उसकी चेतनता का प्रभाव विश्वव्यापी होना आवश्यक है।

वेदान्तदर्शन में ऊपर लिखित सारे प्रकरण को एक सूत्र में कहा है- **जन्माद्यस्य यतः** १.१.२ अर्थात् ब्रह्म वह है जिससे इस (जगत्) का जन्म, धारण और विनाश होता है।

अंग्रेजी में इस युक्ति को (Cosmological Argument) कहते है, परन्तु पाश्चात्य तर्क में सृष्टि और प्रलय की चक्र-परम्परा का विचार न होने से इस युक्ति का अभिप्राय केवल प्रवृत्ति की युक्ति रहता है।

रचयिता Teleological Argument

दूसरी युक्ति रचना (design) की है ।इसे अंग्रेजी भाषा में Teleological Argument कहते हैं। बुद्धिपूर्वक धृति का वर्णन करते हुए हम इस युक्ति की ओर संकेत कर चुके हैं, परन्तु तार्किकों की परिभाषा को दृष्टि में रखते हुए इस युक्ति पर संक्षेप से अलग विचार कर लेने में हानि नहीं।

प्रत्येक विज्ञान (science) बताता है कि संसार की स्थिति नियमों पर है। इन्हीं नियमों का संग्रह-भूत ही तो विज्ञान है। इन्ही नियमों के आश्रय से सब कलाओं, सब धन्धों का व्यवहार चलता है। यदि कृषक बीज के पृथ्वी में डाले जाने के पीछे उसके विशेष सिंचन आदि संस्कारों के अनन्तर उसके फलस्वरूप में परिणत होने में सन्देहवान् हो तो कृषिकला में प्रवृत्त ही न हो। यही नियम Science of Agriculture कृषि-विज्ञान कहलाते हैं। यही अवस्था और विज्ञानों की है। विज्ञान नाम है नियमों का। ब्रह्माण्ड में भौतिक पदार्थों से और फिर सारा भौतिक प्रपञ्च प्राणि-जगत् से एक सूत्र से बँधा हुआ है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो प्रत्येक क्षेत्र की रचना निराली प्रतीत होती है। कैसा कौतुक है कि इन सब रचनाओं की फिर एक व्यापक रचना है। जगत् के अंग-अंग की और फिर इस सम्पूर्ण अंगी की ध्वनि है संगठन। यह संगठन, यह रचना सर्वज्ञ रचयिता के बिना और किसकी हो सकती है।

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।

सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् सो विद्यात् ब्राह्मणं महत्।।

अथर्व. १०.८.३८

अर्थ- जो उस अलग-अलग (प्रत्येक विज्ञान के) क्षेत्र में फैले हुए सूत्र को जानता है और फिर उस सूत्र के सूत्र (व्यापक रचना) को जानता है वह परमब्रह्म को जानता है।

विज्ञानों और शास्त्रों का अपना-अपना (synthesis) संश्लेष है। इन सब सश्लेषों (synthesis) का एक परम संश्लेष (Highest Synthesis) है। इसे ब्रह्म-विद्या कहते हैं। इसी संश्लेष का वर्णन उपनिषदों ने इन मनमोही शब्दों में किया कि इसके जानने से सब कुछ जाना जाता है। विज्ञान को हेय नहीं बताया किन्तु उसका ध्येय (ideal) और उत्कृष्ट कर दिया है। विज्ञान का **परम संश्लेष** Highest Synthesis और वेद का **सूत्रस्य सूत्र** एक है।

वेदान्त दर्शन के दूसरे अध्याय के दूसरे पाठ में इस विषय की अच्छी विवेचना की गई है। विस्तार के लिये वहाँ देखें।

कर्म बल संयोजक (Moral Argument)

तर्क की अन्तिम युक्ति धर्म की या आचार की युक्ति है। इसे अंग्रेजी में Moral Argument कहते हैं। आचार का आधार परमात्म विश्वास है। योगी फल की आकांक्षा से ऊँचा हो जाता है, परन्तु यदि कृति का फल ही न हो तो कोई कर्म करने के लिये प्रेरणा किस भाव में पाये? भलाई का फल स्वयं भलाई ही सही, सदाचार का लाभ केवल आत्मोन्नति ही हो, तो भी इस फल का सफलीकर्त्ता चाहिये।

वेद कहता है-

सविता सत्यधर्मा अथर्व. १०.८.४२

अर्थात प्रेरक प्रभु का धर्म अटल है उसने सत्य Righteousness को धर्म बताया है।

सत्य धर्म है, कार्य इस प्रकार होना चाहिये। ऐसा करना कर्त्तव्य है, इसकी प्रथम प्रेरणा कहाँ से हुई? वरुण देवता के सब सूक्त परमात्मा के इसी गुण का प्रतिपादन करते हैं।

आर्य तर्क की विशेषता यह है कि इसने आध्यात्मिक (Metaphysical) और आधिभौतिक (Physical) नियमों को एक ही लड़ी में पिरो दिया है। वही व्यवस्था जो पृथ्वी में डाले हुए बीज को समय आने पर बनाती है, किये हुए कर्म को समय आने पर परिपाक भी देती है।

भगवत्गीता में कहते हैं-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

यहाँ किया हुआ नष्ट नहीं होता। परिपाक का प्रतिबन्धक कोई नियम वा कारण नहीं।

इसी कारण से बादरायण मुनि ने वेदान्त की रचना और आचार की युक्ति (Teleological और Moral Argument) को एक साथ ही सूत्र में **शास्त्रयोनित्वात्** कहकर बड़ी सुन्दरता से ग्रथित किया है। हमारी परिभाषा में **शास्त्र सत्य प्रतिपादित करनेवाली किसी भी व्यवस्था को कहते हैं।** भौतिक विज्ञान भी शास्त्र है और आध्यामिक विज्ञान भी। बादरायण के सूत्र का अभिप्राय यह है कि जहाँ इन शास्त्रों के नियमों को संसार की रचना में व्यवहाररूप में क्रियात्मक भाव देनेवाला परमात्मा है, वहाँ इन नियमों का प्रथम ज्ञान भी प्रभु स्वयं देते हैं। वेदान्त शास्त्र की यह नई युक्ति है जो पाश्चात्यों को नहीं सूझी। इसका विचार हम 'ज्ञान का आरम्भ' नाम के प्रकरण में करेंगे।

पूर्णसत् Ontological Argument

इन सब युक्तियों के अतिरिक्त एक युक्ति विशेष एनसल्म ने दी थी। उसका खण्डन कान्ट ने Ontological Argument कहकर किया था। उस युक्ति का अभिप्राय यह है कि महतो महान् का भाव मनुष्यों में है और इसका निरा-करण नहीं हो सकता, इसलिए परमात्मा है। Anselm ने अपनी युक्ति को अशुद्ध रूप दिया। डेकार्ट आदि तार्किकों का नाम भी इस युक्ति के साथ संयुक्त है। अपूर्ण जीव पूर्ण की भावना करता है। यह भावना किसी काल्पनिक भ्रमात्मक भावना से भिन्न है। भ्रमात्मक भावनाओं का आधार हमारे सत्य प्रत्यय हैं। उन प्रत्ययों को विविध रूपों में संश्लिष्ट कर हम अपने भ्रमों की सृष्टि करते हैं। भूत-प्रेत आदि का हमने प्रत्यक्ष नहीं किया, परन्तु जिन अंगों की कल्पना हम उन भूत-प्रेतों में करते हैं, यथा हाथ, पाँव, दाँत, मुख इत्यादि वे हमारे ज्ञान में विद्यमान हैं। उन अंगों का एक अद्भुत मिश्रण हमारा

भूतादि भ्रम होता है। इसके विपरीत पूर्णता को हमने कभी नहीं देखा! तो भी उसकी ओर जाने का प्रयत्न है। दोष हटाने, न्यूनताएँ मिटाने का यत्न किसी पारमार्थिक पूर्ण सत्ता की ओर संकेत करता है। हमारी सत्ता (Being) का विचार पूरा नहीं होता जब तक किसी पूर्ण सत् (Perfect Being) की भावना मात्र का ही उसमें समावेश न हो। हमारी अपूर्णता उस पूर्ण को घेर नहीं सकती, इस अंश में वह अज्ञेय है, परन्तु हमारी अपूर्णता तो भी ऊन रह जाती है, असत् हो जाती है जब तक कि उससे भिन्न कोई पूर्ण न हो। सत्ता, ज्ञान, साफल्य, सब दृष्टियों से वह पहले पूर्ण हो। उसमें नञ् समास होकर अपूर्ण बने। वेद कहता है-

न कुतश्चनोनः। अथर्व. १०. ७. ४४

वह किसी बात में ऊन नहीं।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।

अथर्व. १०. ८. १५

परमात्मा परिपक्व जीव से दूर (उत्कृष्ट) है और अपरिपक्व तो उसकी ओर जाता ही नहीं।

यहाँ यह भी सिद्ध हो गया कि परमात्मा मुक्त जीवों से भिन्न है।

अन्तः प्रत्यक्ष (Intuitional Argument)

यहाँ तर्क की समाप्ति है, अन्तिम युक्ति (Intuition) अन्तः प्रत्यक्ष की है। वेद कहता है-

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत् - अथर्व. २. १. १

अर्थ- योगी उसे देखता है जो हृदय-देश में छिपा है। फिर कहा है-

अन्तरिच्छन्ति तंजने रुद्रं परो मनीषया।
गुभ्णान्ति जिह्वया ससम्। ऋ. ८. ७२. ३

अन्तः प्रत्यक्ष की शक्ति पर हमारे शास्त्रों ने बहुत बल दिया है। प्रत्येक विज्ञान की पूर्ण सिद्धि इसी प्रमाण से मानी है। आज फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक हेनरी वर्गसन भी उसी अन्तः प्रत्यक्ष को Intuition नाम देकर इसी की साक्षी को चरम साक्षी मान रहे हैं।

परमात्मा का स्वरूप, ज्ञान - परमात्मा के गुणों का वर्णन आर्यसमाज के दूसरे नियम में किया गया है जैसा कि हम अभी दर्शायेंगे। परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, सत् प्रकृति भी है सत् चित् आत्मा भी। परमात्मा, आत्मा के ज्ञान में यह भेद है कि परमात्मा ज्ञानस्वरूप है। वेद कहता है-

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।
संख्यातारस्य निमिषो जनानामक्षानिवश्वघ्नी
निमिनोति तानि।।

अथर्व. ४.१६.५

पृथिवी और आकाश के बीच अर्थात् भौतिक जगत् में उसके बाहर जो कुछ होता है वह सब राजा वरुण जानता है। यही नहीं, उसके तो प्राणी-प्राणी के निमेष-उन्मेष तक गिने हुए हैं। आत्महत्यारे इन निमेषों को जुए का दाँव बनाते हैं।

आनन्दस्वरूप - वेद ने परमात्मा को पूर्ण कहा है। मानुषी पूर्णता से पूर्णतर- ऐसा पूर्ण जिसकी ओर ये पूर्णताएँ दौड़ती हैं और सदैव दौड़ती चली जायेंगी। ऊनता दुःख है, पूर्णता सुख है। वेद के शब्दों में-

स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

अथर्व.

जिसका आनन्द (स्वः) केवल है अर्थात् उसमें किसी अन्य विरोधी भाव का लेशमात्र भी नहीं, उस महतो महान् परब्रह्म को नमस्कार है।

अभोक्ता - दुःख भोग में है। अकेवल सुख और केवल तथा अकेवल दुःख भोग कहलाते हैं। परमात्मा अभोक्ता है। वह सुख-दुःख से ऊँचा है।

अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ऋ. १.१६४.२०

अर्थ- एक (परमात्मा) अभोक्ता होकर साक्षी है। आत्मा का सुख लिंग है। परमात्मा का धर्म स्वरूप। स्वरूप नित्य है, लिंग अनित्य।

निराकारादि - इसी पूर्णता के भाव में निराकार, सर्वशक्तिमान्, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, इन सब भावों का समावेश है। वेद में इन भावों का अलग-अलग वर्णन भी आया है, यथा-

निराकार- अकायमव्रणम्। यजु. ४०.४

सर्वशक्तिमान्-शुक्रम्। यजु. ४०. ४

अजन्मा-अजस्तद्दृशे क्व। अथर्व. १०. ८. ४

श्रृणोत्वजः। यजु. ३४.५३

अनन्त-अनन्त विततं पुरुष। अथर्व. १०. ८. १२

निर्विकार-अज एकपात्। यजु. ३४.५३

अनादि-सनातनम्। अथर्व. १०. ८. २२

अनुपम-अपूर्वेणोषिता वाचः। अथर्व. १०. ८.२३

न तस्य प्रतिमा अस्ति। अथर्व. ३२. ३

सर्वाधार-सो दृंहयत सो धारयत। अथर्व. ४.११.७

सर्व-व्यापक-उरुकोशो वसुधानस्तवाय यस्मिन्निमा

भुवनान्यन्तः अथर्व. ११. २. ११

सर्वज्ञ-वेद भुवनानि विश्वा।

अजर अमर

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्। अथर्व. १०. ८. ४४

अभय-अभयंकर। अथर्व. १०. २१. १

नित्य-एकपात्। यजु. ३४.५३

पवित्र-पवमानः। अथर्व. १०. ८. ४०

न्यायकारी-सोऽर्यमा। अथर्व. १३. ४. ४

दयालु-दयसे विजानन्। यजु. ३३. १८

सर्वेश्वर-सर्वस्येश्वरः अथर्व. १०. ४. १

सृष्टिकर्ता-य इदं विश्वं भुवनं जजान।

अथर्व. १३. ३. १५

सर्वान्तर्यामी-स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु

यजु. ३२. ८

हमने केवल संकेत दे दिये हैं। पाठक इन गुणों का विस्तार स्वयं कर लें।

एकमात्र उपास्य - आर्यसमाज का दूसरा नियम परमात्मा के इस स्वरूप का वर्णन कर रहा है कि उसी की उपासना करनी योग्य है। वह वेद के इस वाक्य का अनुवाद मात्र है-

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। अथर्व. २. २. १

प्रकाश स्वरूप ज्ञान और ज्ञेय का धर्त्ता (आदि मूल) संसार का एक मात्र पति ही नमस्कार योग्य है। उसकी स्तुति प्रजाओं में करो।

पूर्ण एक ही हो सकता है, अनेक नहीं।

सार - संसार को समष्टि शरीर समझ लें तो उसमें एक व्यापक आत्मा की सत्ता प्रतीत होती है। जीवों की शक्ति परिमित है। उनमें से न कोई अकेला सारे विश्व का आत्मा हो सकता है और न ये सब मिलकर। परिमित मिलकर भी परिमित ही रहेंगे। वेद ने आत्मा को कहा है **अवःपरेण** ऋ. १, १६४. १७-१८ कि यह परमात्मा से निकृष्ट है। दूसरा अर्थ 'पर' का है सूक्ष्म। अर्थात् परमात्मा जीव से भी सूक्ष्म है।

परमात्मा की सिद्धि के लिये निम्नलिखित युक्तियाँ तार्किक लोग देते हैं (१) प्रवृत्ति की युक्ति Cosmological Argument इस युक्ति का सार यह है कि जगत् की प्रवृत्ति किसी चेतन से हुई है, क्योंकि इसके विकास में बुद्धिद्योतक नियम काम करते हैं। वेद कहता है-

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।

यजु. ३१. ४

उस परमपुरुष से विश्व की प्रवृत्ति हुई, जड़-चेतन दोनों की।

वैदिकधर्मी इस प्रवृत्ति के साथ धृति और निवृत्ति भी मिला देते हैं। संसार थमा काहे पर है? पदार्थों के पारस्परिक आकर्षण पर। पदार्थों के पारस्परिक आकर्षण स्थिर क्यों हैं? कौन है जो दो पदार्थों को आपस में आकर्षक भी बनाता है और आकृष्य भी? यह पारस्पारिक अनुकूलता धारक का द्योतन करती है। वेद कहता है-

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणन्मिषच्च यत्।।

अथर्व. १०. ८. २

धारण के पीछे निवृत्ति है। वेद कहता है-

काले निविशते पुनः। अथर्व. ११.१५.१

संख्याकर्त्ता परमात्मा में सबका लय होता है।

इन तीनों भावों प्रवृत्ति, धृति और निवृत्ति का नियामक परमात्मा है। यदि ये केवल यान्त्रिक क्रियाएँ हों तो निवृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से निवृत्ति न हो सके। प्रकृति का स्वभाव तो या निवृत्ति होगा या प्रवृत्ति। उसको समय-समय पर बदल देने वाला चेतन प्रभु है।

(२) रचना की युक्ति (Teleological Argument)। इस युक्ति का आधार विज्ञान है। विज्ञान संसार के विविध अंगों में नियमों का अविष्कार करता है। इसी को रचना या Design कहते हैं। अंग-प्रत्यंग फिर आपस में आन्तरिक नियमों से मिले हैं। यथा वनस्पति-शास्त्र वनस्पति जगत् में नियमों की सिद्धि करता है और पशु-शास्त्र (Zoology) पशु-जगत में। फिर वनस्पति-शास्त्र का पशु-शास्त्र से सम्बन्ध है, क्योंकि पशु और वनस्पति एक अटूट रस्सी से आपस में बँधे हुए हैं। इन सब विज्ञानों के ऊपर एक व्यापक विज्ञान है। उसे ब्रह्म-विद्या कहते हैं। वेद ने इसी परम संश्लेष (Highest Synthesis) को सूत्रस्य सूत्रम् अथर्व. १०. ८. ३८ कहा है।

सूत्रं सूत्रस्य विद्यात्स विद्यात् ब्राह्मणं महत्।

प्रत्येक विज्ञान के आधारभूत नियमों का रचयिता भी प्रभु है और उस विज्ञान का प्रथम बोध भी प्रभु देता है।

(३) धर्म-युक्ति (Moral Argument)- सदाचार का आधार परमात्मा की सत्ता का विश्वास है। सदाचार परमात्मा की प्रेरणा है। उसका फल भौतिक हो अथवा अभौतिक या निष्कामता हो, उस फल का प्रेरक **सत्यधर्मा सविता।**

अथर्व. १०. ८. ४२ है ।

आर्यविचार भौतिक नियमों तथा आधार सम्बन्धी नियमों दोनों के सूत्रीकरण (Systematisation) को शास्त्र नाम देता है। इस शास्त्र का प्रथम प्रादुर्भाव 'वेद' के रूप में होता है। आत्मा की ध्वनि Conscience परमात्मा की प्रथम प्रेरणा है। धर्म-मर्यादा आरम्भ में उसी प्रभु की स्थापित की हुई है।

(४) पूर्ण की सम्भावना की युक्ति (Ontological Argument)- हम अपूर्ण हैं और पूर्णता चाहते हैं। यह पूर्णता का विचार बिना पूर्ण सत् के नहीं हो सकता। यदि हमारी भावना भ्रममात्र भी हो तो उसका मूल सत्य प्रत्यय होना चाहिए, क्योंकि भ्रममात्र भी सत्य का अपभ्रंश होता है। जिस आदर्श की ओर हम दौड़ते हैं और जिसके अंशमात्र का अपने उत्कर्ष में अनुभव करते हैं। वह आदर्श सत् है। वही परमात्मा है।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।

अथर्व. १०. ८. १५

अर्थात् मुक्त जीव परमात्मा नहीं होते। अमुक्त उसकी ओर आते ही नहीं।

(५) अन्त:प्रत्यक्ष की युक्ति (Intuitional Argument) इस युक्ति का दूसरा नाम है योगी का प्रत्यक्ष।

अन्तरिच्छन्ति तं जने ऋ ८. ७२. ३

अर्थ- उस जन के अन्दर ढूंढते हैं।

वेनस्तत्पश्यन् अथर्व. २. १. १

अर्थ- योगी उसे देखता है।

आज तत्त्ववेत्ता हेनरी वर्गसन भी इसी प्रत्यक्ष को परम प्रमाण मानते हैं।

परमात्मा का स्वरूप

१. परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानलिंगी नहीं। अत: सर्वज्ञ है।

सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे।

अथर्व. ४. १६. ५

२. परमात्मा आनन्द स्वरूप है। पूर्ण को क्लेश कैसा?

स्वर्यस्य च केवलम्।

अर्थ- जिसका सुख बेलाग है।

३. दु:ख केवल सुख में है अर्थात् भोग में।

अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

परमात्मा न भोगता हुआ साक्षी है।

४. आर्यसमाज का दूसरा नियम-ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है।

५. परमात्मा एक है। पूर्ण अनेक नहीं हो सकते।

यस्पतिरेक एव।

अथर्व. २. २. १

वह पति एक ही है।

६. उपास्य है- नमस्यो विक्ष्वीड्य:।

अथर्व. २. २. १

नमस्कार करने तथा प्रजाओं में प्रशंसा करने योग्य है।

कल्याण का मार्ग : निष्कामता

कन्हैयालाल आर्य

अन्त:करण की चार अवस्थायें होती हैं। **पहली अवस्था**- कुछ जीव अन्त:करण की घनीभूत (मूर्च्छा) अवस्था में जी रहे हैं जैसे कि वृक्ष लतादि। जिनकी कोई कामना नहीं, कोई संकल्प नहीं, फिर भी दु:ख भोग रहे हैं। बेचारे खड़े और पड़े होकर भोग रहे हैं। **दूसरी अवस्था**- कुछ लोग ऐसे होते हैं कि संकल्प पर संकल्प तथा विकल्प पर विकल्प करते रहते हैं। चाहिये तो खाने को बढ़िया, पहनने को भी बढ़िया, परन्तु कर्म कुछ नहीं करना। भीतर संकल्प-विकल्प का यन्त्र धमा-धम चल रहा है। हाथ-पैर उचित दिशा में चलाना नहीं, बिना कर्म किए अच्छी से अच्छी सुविधायें और साधन मिलने चाहियें। **तीसरी अवस्था**- जैसे संकल्प होते हैं, कामनाएँ होती हैं वैसे करते रहते हैं, उनका आयुष्य रूपी इन्धन चल रहा है, शक्ति व्यय हो रही है, जीवन रूपी गाड़ी चल रही है। **चौथी अवस्था**- कोई-कोई वीतरागी ज्ञानी विरले जन होते हैं जिनके भीतर काम और संकल्प निवृत्त हो चुके हैं। प्रारब्ध वेग के ढलान में जीवन की गाड़ी मधुरता से सरक रही है। आनन्द की यात्रा में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वीतरागी ज्ञानी में कोई कामना नहीं होती। इसलिए कार्यों का बोझ उन्हें नहीं लगता। उनके द्वारा बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न होते रहते हैं। वे अपने सहज स्वाभाविक आत्मानन्द में मस्त रहते हैं।

जो लोग कामनाओं से आक्रान्त होते हैं उनको बहुत परेशानियाँ होती हैं। रावण का पतन हमारे सम्मुख है। वह कामना से आक्रान्त होकर सीता जी का हरण करके ले गया। ऐसे बलवान् विद्वान् का पतन कामना ने किया। कामनायें पूरी करने के यत्नों से भविष्य उज्ज्वल नहीं होता। कामनाएँ मिटा दो, तभी आपका भविष्य उज्ज्वल हो जायेगा। जिसका वर्तमान उज्ज्वल है, उसका भविष्य भी उज्ज्वल होगा।

कामनाएँ तथा इच्छायें वर्तमान को दबा देती हैं तथा भविष्य की चिन्ता में व्यक्ति को उलझाती है। जहाँ कामना होती है, वहाँ कुमति आ जाती है। जहाँ पर कामनाएँ मिट जाती हैं, वहाँ सुमति आ जाती है। तभी तो कहा है-

जहाँ सुमति वहाँ सम्पत्ति नाना,
जहाँ कुमति वहाँ विपत्ति निधाना।

सुमति और कुमति सब के हृदयों में रहती है। जहाँ कुमति होती है, वहाँ दु:ख के ढेर खड़े हो जाते हैं। कामनाओं वाला व्यक्ति शुभ-अशुभ नहीं देखता। कामनाएँ जितनी कम होंगी, सुमति उतनी ही अधिक होगी। सुमति और कुमति हम सबके वश में है। कामनाओं को बढ़ाकर आप कुमति को बढ़ाओ या उन्हें कम करके सुमति को बढ़ाओ, यह सब हमारे वश में है। इस कार्य में हम स्वतन्त्र है।

यदि सुख भोगने की कामना है तो औरों को सुख पहुँचाओ। औरों को सुख पहुँचाने से चित्त में दिव्यता आती है। किसी कामी व्यक्ति को स्नेह करोगे तो लोभ बढ़ेगा। मोही व्यक्ति को मोह करोगे तो मोह बढ़ेगा और लोभ बढ़ेगा। यदि परमात्मा से स्नेह करोगे तो दिव्यता बढ़ेगी। यदि स्नेह किये बिना नहीं रह सकते तो प्रभु से स्नेह करो। कर्म किए बिना नहीं रह सकते तो दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए कर्म करो।

ऐसा विचार करें कि मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि राग और द्वेष के हेतु होने पर भी चित्त में राग और द्वेष न आये? ऐसा ज्ञान कब पाऊँगा कि फिर माता के गर्भ में न जाना पड़े? जन्म-मरण के चक्कर में न घूमना पड़े। मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं देह रहते हुए देही-स्वरूप में रम जाऊँगा?

यदि जीवन में एक भी इच्छा शेष है तो समझो कि कई कामनाएँ उनके पीछे-पीछे अभी शेष हैं। वह एक कामना पूरी होते-होते कई कामनाएँ जग जाती हैं। जो कामनाओं को पूर्ण करने में लगे रहते हैं, वे सदा दु:खों को आमन्त्रण देते रहते हैं। यदि कामना पूरी नहीं होती, तो क्षोभ उत्पन्न होता है, कामना के पूर्ण होने में यदि कोई बलवान् व्यक्ति विघ्न डालता है, तो भय उत्पन्न होता है। समान स्थिति वाला व्यक्ति विघ्न डालता है, तो ईर्ष्या होती है, अपने से हीन स्थितिवाला व्यक्ति विघ्न डालता है तो क्रोध

उत्पन्न होता है। इस प्रकार से भय, ईर्ष्या और क्रोध का जन्म होता है। यदि कामनाएँ नहीं हैं तो ये सब भय, ईर्ष्या और क्रोध भी नहीं होगा।

वर्तमान की कामना के दल-दल में न फँसो, न सुख-दु:ख को स्मरण करके भूतकाल में पीछे गिरो और न ही भविष्य में सुख-दु:ख की कल्पना करके अपने वर्तमान को बिगाड़ो। वर्तमान में ज्ञान के ऊँचे शिखर पर पग रखकर चलो तो बेड़ा पार हो जायेगा। ज्ञान जैसा मित्र और अज्ञान जैसा शत्रु विश्व में कोई नहीं। जगत् के सारे शत्रु मिलकर भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, जितना अज्ञान बिगाड़ता है। विश्व के सारे मित्र मिलकर भी उतना ही संवार सकते, जितना आत्मज्ञान संवारता है। कामना रहित होने से हम महान् हो जायेंगे। कामनाओं को पूर्ण करते-करते न जाने हम कितनी विपत्तियों से घिर जाते हैं। एक बार कामना रहित होकर देखो। कामना रहित होने का तात्पर्य है इच्छा, वासना, संकल्प-विकल्प से रहित होना। यदि हम ऐसा कर पाये तो दिवस-रात्रि भजनमय, भक्तिमय बन जायेगा। नौकरी करना, व्यापार करना, दुकान चलाना सब भजनमय और भक्ति मय हो जायेगा।

विषय, सुख भोगने की इच्छा बन्धन हैं। इच्छायें और कामनायें सब प्रकार की शान्ति और आनन्द को समाप्त कर देती हैं। ज्ञानी वर्तमान में काम करते हैं। निष्काम होकर भविष्य के विषय-सुख की आकांक्षा नहीं करते।

जगत् के सभी कार्य पूर्ण करके, आज तक कोई भी शान्ति से मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। सारे काम निपटाकर सब व्यवस्थित करके, अनुकूलता प्राप्त करके भजन करेंगे, प्रभु सिमरण करेंगे, यह लोगों को भ्रम होता है। भजन, प्रभु सिमरण, परोपकार के लिए अनुकूलता की प्रतीक्षा मत कीजिये। जाने कब मृत्यु का पाश आ जाये और सबकुछ समाप्त हो जाये। अत: अभी से एकान्तवास, इन्द्रियों को आवश्यकतानुसार भोजन, आवश्यक मौन, वेद-शास्त्र उपनिषदों का अवलोकन, अध्ययन करके बुद्धि को सूक्ष्म बनाकर मृत्यु के पूर्व अपनी अमरता का साक्षात्कार कर लेना चाहिये। तुच्छ विचारों, दुर्बल विचारों को आने ही न दें। मुझे तो परमात्मा की प्राप्ति करनी है। ऐसे विचार सदा सामने रखें। मन को दुर्बल मत करें तभी परमात्मा से साक्षात्कार होगा।

कामनायें ही व्यक्ति की योग्यता को क्षीण करती है। चिन्ता, भय, शोक ये सब कामनाओं की उपज हैं। अज्ञान से चित्त में मलिनता आ जाती है। ज्ञान से चित्त की शुद्धता से कामनाएँ सात्विक हो जाती हैं। अपने सुख-वृद्धि के स्थान पर दूसरों को सुख देने पर आनन्द आने लगता है। दूसरों को मान देने, सुख देने का अर्थ स्वयं को सम्मानित करना एवं सुख देना है। दूसरों का मंगल करनेवालों का कभी अमगंल नहीं होता। ऐसी स्थिति में मान की कामना मिट जायेगी। कामना मिटते ही विलक्षण योग्यता आ जायेगी।

मन के रोग को आधि कहते हैं और तन के रोग को व्याधि कहते हैं। तन का रोग औषधि से मिट जाता है, परन्तु मन का रोग औषधि से नहीं मिटता। मन का रोग मिटता है निष्कामता से। मन में आधि क्यों आती है 'उसके पास अमुक वस्तु है, मेरे पास नहीं, ऐसा अनुभव करके मनुष्य भविष्य में उस वस्तु का सुख भोगने का आयोजन करने लगता है। उस कामना से मन में आधि आ जाती है। मन में व्याधि आती है तो तन में व्याधि अपने आप प्रवेश कर जाती है। ये दोनों परस्पर एक-दूसरे पर आश्रित है। तन रोगी तो मन विषाद में डूब जाता है और यदि मन में विषाद, उद्वेग हो तो तन रोगी हो जाता है।'

प्रश्न यह है कि मन या चित्त को विश्रान्ति कैसे मिले? कामनाएँ जितनी कम होंगी, संकल्प-विकल्प जितने कम होंगे, बुद्धि को उतना ही कम परिश्रम करना पड़ेगा। आत्मा चेतना में विश्राम पाती है, बलवान् बनती है। बुद्धि जितनी बलवान् होगी, मन उतना ही उसका अनुयायी बनेगा। इन्द्रियाँ मन के पीछे चलेंगी, मन बुद्धि के पीछे और बुद्धि आत्मरस में तृप्त होगी, तो सम्पूर्ण जीवन में आत्मरस छलकेगा। जीवन जीने की कला आ जायेगी। इस काल में योगी का योग सफल हो जाता है। भक्त की भक्ति सफल हो जाती है। तपस्वी का तप, जपी का जप सफल हो जाता है। अत: अपनी कामनायें कम से कम कीजिये, अपनी आवश्यकतायें कम से कम कीजिये। अपनी बुद्धि को सन्मार्ग में लगाइये। यही कल्याण का मार्ग है।

4/45, शिवाजी नगर, गुरुग्राम (हरियाणा)

योग-दर्शन में चित्त व सम्बन्धित सैद्धान्तिकी-२

डॉ. हरिश्चन्द्र

सांख्य-दर्शन में अन्त:करण के तीन अवयव बुद्धि, अहंकार व मन बताये गये हैं। बुद्धि, ज्ञान व कर्म का निश्चय कराती है। अहंकार संस्कारों को धारण करता है- वर्तमान जन्म के और पिछले जन्मों के भी। मन द्वारा इन्द्रियों का संचालन होता है। पुरुष (आत्मतत्त्व) अन्त:करण का स्वामी है, उसके निकटतम बुद्धि है; तदनन्तर अहंकार, मन और इन्द्रियाँ। योग-दर्शन में मुख्यत: चित्त पद का प्रयोग हुआ है तो स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि अंत:करण में चित्त क्या है? यह बुद्धि, अहंकार, मन से अलग चौथा अवयव नहीं हो सकता है क्योंकि-

सांख्य २.३८ **करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात्**- कुल करण १३ हैं जो अपना-अपना कार्य करते हैं- बुद्धि, अहंकार, मन और ५+५ इन्द्रियाँ। अत: चित्त अन्त:करण का चौथा अवयव नहीं हो सकता है। बुद्धि, अहंकार, मन में से ही किसी एक के लिये पतञ्जलि ने चित्त-पद का प्रयोग किया है। तो प्रश्न उठता है- बुद्धि, अहंकार, मन में से किसके लिये?

योग-दर्शन १.१-२ **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**- चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है; चित्त के निरुद्ध हो जाने पर द्रष्टा पुरुष स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। अत: स्पष्ट है कि पतञ्जलि ने बुद्धि को ही चित्त कहा है, जो पुरुष के निकटतम है, जिसे पुरुष सदा निहारता रहता है व बुद्धि की वृत्तियाँ/हलचल निरुद्ध हो जाये तो पुरुष स्वयं में ही अवस्थित हो जायेगा।

महर्षि दयानन्द ने इसीलिये सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में विज्ञानमय कोश के अन्तर्गत चित्त व बुद्धि को गिना है। उसी समुल्लास में अन्यत्र वे लिखते हैं- **निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त।** इस आशय को हम दैनिक जीवन के एक उदाहरण से समझ सकते हैं। मानिये, हम उपवन में एक पुष्प को देखते हैं। चक्षु ने उस पुष्प के रूप को मन अहंकार से होते हुए बुद्धि तक पहुँचाया- इसे व्यासभाष्य में इन्द्रिय-प्रणाली कहा गया है। बुद्धिवृत्ति उस पुष्प के रूप को अपना लेती है, अर्थात् बुद्धि तदाकार हो जाती है। अब बुद्धि निश्चय करना चाहती है कि सम्मुख उपस्थित पुष्प किस प्रजाति का है गुलाब, गेंदा, चम्पा...? निश्चय करने के लिये बुद्धि स्मृति में से (अहंकार में से) पुष्प-सम्बन्धी पिछला ज्ञान लाकर, सम्मुख उपस्थित पुष्प का मिलान करना चाहती है। तुलना करने की यह प्रक्रिया पूरी हो जाने पर बुद्धि निश्चय करती है कि सम्मुख उपस्थित पुष्प गेंदे का है, न कि गुलाब का या चम्पा का या कोई अन्य। यह दैनिक जीवन की एक सामान्य गतिविधि है।

इन्द्रियों व मन द्वारा प्राप्त ज्ञान का बुद्धि निश्चय कराती है। इस प्रक्रिया में अहंकार में धारण की हुई पुराने ज्ञान की स्मृति की भी भूमिका होती है, जिससे मिलान करने पर ही बुद्धि निश्चयात्मक ज्ञान करा पाती है। बुद्धि के अन्तर्गत स्मृति में से जो अहंकार में धारण की हुई है) पुराने ज्ञान का स्मरण कराना यह कार्य 'बैकग्राउण्ड' में होता रहता/चित्त करता है। चित्त कोई स्वतन्त्र इकाई नहीं है, अपितु बुद्धि का ही 'बैकग्राउण्ड' में कार्यरत पक्ष 'चित्त' है।

जिन्हें ध्यान उपासना का अनुभव है, वे जानते हैं कि ध्यान में बैठने पर साधक सर्वप्रथम बुद्धि की विचार-प्रक्रिया को विराम देता है, जो अपेक्षाकृत आसान है। किन्तु उसके पश्चात् भी उसके बुद्धिपटल पर (या इसे चित्तपटल कहना उपयुक्त होगा, क्योंकि बुद्धि अपनी निश्चयात्मक सामर्थ्य का उपयोग नहीं कर रही-बुद्धि की विचार-प्रक्रिया को अवरुद्ध किया जा चुका है) चित्तपटल पर कुछ उपस्थित हो जाता है, जो अहंकार में उपस्थित संस्कारों से उदित होता है। इसे चित्तवृत्ति कहा जाता है। योग-मार्ग का उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध करना है- इस प्रक्रिया में चित्त को प्रथम व्युत्थान अवस्था (क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त) से एकाग्र अवस्था व पुन: वहाँ से भी आगे निरुद्ध अवस्था में ले जाना। एकाग्र अवस्था को ध्यान कहा जाता है और निरुद्ध अवस्था में समाधि-लाभ होता है,

जिसे उपासना- प्रभु की गोद में ईश्वर के आनन्दस्वरूप भाव में मग्न होना इन शब्दों में व्यक्त किया गया है।

यजुर्वेद ३४.१-६ के 'शिव-संकल्प' मन्त्रों में (जिनमें '**तन्मेमन: शिवसंकल्पमस्तु**' मन्त्रांश उपस्थित होता है) क्रमश: अन्त:करण के भीतर की यात्रा का वर्णन है। **प्रथम** मन्त्र जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं का वर्णन करता है; **द्वितीय**- मनोमय कोश द्वारा कर्म का सम्पादन; **तृतीय** विज्ञानमय कोश द्वारा ज्ञानप्राप्ति; **चतुर्थ**- ऊहा अर्थात् बुद्धिपूर्वक विचार; **पंचम** जब बुद्धि की विचार-प्रक्रिया को अवरुद्ध कर चुकने पर साधक चित्तवृत्ति निरोध के बल पर समाधिलाभ पाता है तो ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान को प्राप्त करता है- सम्प्रज्ञात योग। इस अवस्था को चित्त पद द्वारा मन्त्र में बताया गया है **यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां...** **षष्ठ** साधक का प्रभु की गोद में पहुँचने का मार्ग और उसमें अन्त:करण की योग्यता का ईश्वरीय आश्वासन है।

अत: हम देखते हैं कि जब बुद्धि विचार-प्रक्रिया से विमुख होकर योगमार्ग पर आगे बढ़ती है, तब वही करण, चित्त कहलाता है। अर्थात् वही करण, जो पूरी सामर्थ्य से बुद्धि के रूप में ऊहा कर सकता था, अब अत्यल्प सामर्थ्य से चित्त के रूप में पुरुष के सम्मुख है। मोटे तौर पर, इंजिन के दृष्टान्त द्वारा इसे ऐसे समझ सकते हैं- जब एक वाहन तेज गति से चल रहा है, तब इंजिन पूरी सामर्थ्य से काम कर रहा होता है, किन्तु एक चौराहे पर लाल बत्ती के आने पर वाहन रुक जाता है, परन्तु इंजिन 'आयडलिंग' पर चलता रहता है। बुद्धि को इंजिन के स्थान पर देखें तो बुद्धि तब बुद्धि कहलाती है जब सामान्य जाग्रतावस्था में वह अपनी पूरी सामर्थ्य का उपयोग करते हुए विचार प्रक्रिया में संलग्न रहती है (जैसे, इंजिन पूरी सामर्थ्य से वाहन को तेज गति से चला रहा हो) और यही करण तब चित्त कहलाता है जब अत्यल्प सामर्थ्य पर काम कर रहा होता है (जैसे, इंजिन 'आयडलिंग' पर) जैसे योग-मार्ग में। योग-मार्ग के साधक जानते हैं कि बुद्धि-वृत्ति का निरोध करना बहुत कठिन नहीं है। किन्तु बुद्धि-वृत्ति (विचार-चिन्तन की गतिविधि) से पीछा छुड़ाकर चित्तवृत्तियों का निरोध कर पाना बहुत दुष्कर है, जिसके लिये योग-दर्शन का उपदेश दिया गया है।

हम देख चुके हैं कि जब एक साधक योगमार्ग पर पर्याप्त आगे निकल जाता है, तो उसकी बुद्धि को चित्त कहा जाता है, जो ईश्वर प्रदत्त प्रज्ञान को प्राप्त करती है व जिसे योग-दर्शन में सम्प्रज्ञात योग कहते हैं इसकी पुष्टि यजु. ३४.५ से ऊपर की पंक्तियों में हमने देखी। इस मन्तव्य को निघण्टु ३.९ और परिपुष्ट करता है, जहाँ **चित्त** व **धी:** को प्रज्ञाप्राप्ति के प्रसंग में साथ-साथ परिगणित किया गया है। गायत्री मन्त्र में **धियो यो न: प्रचोदयात्** से हम परिचित हैं- जब सविता देव परमात्मा के भर्ग: से प्रज्ञा की प्राप्ति कर बुद्धि आलोकित हो जाती है, तब वह धी: कहलाती है। निघण्टु ३.९ में चित्त का भी बुद्धि द्वारा प्रज्ञाप्राप्ति की उन्नत अवस्था में धी: के साथ चित्त का भी उल्लेख किया गया है। हमने ऊपर की पंक्तियों में देखा था कि यजु ३४.५ में भी इसी भावना को चित्त के माध्यम से बताया गया था।

इस प्रकार हमने देखा कि योगदर्शन में बुद्धि को ही चित कहा गया है। बुद्धि की अति सूक्ष्म अवस्था को चित्त द्वारा व्यक्त किया जाता है-

बुद्धि इन्द्रियों द्वारा लाये गये किसी भी विषय का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करा सके तदर्थ उसका ही एक अंश (चित्त) अहंकार में अवस्थित स्मृति में से उस विषय से सम्बन्धित पूर्व ज्ञान लाता रहता है, अर्थात् चित्त स्मरण कराता है।

बुद्धि की विचार-प्रक्रिया (ऊहा) में भी चित्त निरन्तर अहंकार में अवस्थित स्मृति से पूर्व ज्ञान ला कर उसका उपयोग करता रहता है।

बुद्धि की विचार-प्रक्रिया का निरोध करने पर योगमार्ग में प्रगति करने के लिये चित्तवृत्तियों का (जो अहंकार में उपस्थित संस्कारों से उदित होती रहती हैं उनका) निरोध करना होता है। तदर्थ चित्त पर प्रत्यय अंकित किये जाते हैं जिससे कि चित्त एकाग्र अवस्था (ध्यान) को प्राप्त कर सके। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासनाविषय: प्रसंग में ओंकार के मानसिक जप को प्रत्यय के रूप में बताते हैं। यह समझना आवश्यक है कि बुद्धि का सम्बन्ध विचार-चिन्तन से है जबकि प्रत्यय चित्त पर अंकित किये जाते हैं।

योगमार्ग में सफलता मिलने पर साधक चित्त की किञ्चित् निरुद्ध अवस्था को प्राप्त करने पर ईश्वर- कृपया सम्प्रज्ञात योग की अवस्था प्राप्त करता है चित्त में प्रज्ञाप्राप्ति बतायी गयी है।

सारांश

१. हमारे कुल १३ करण बताये गये हैं बुद्धि, अहंकार, मन, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ।

२. योगदर्शन में 'चित्त' पद बुद्धि के लिये ही प्रयुक्त हुआ है जो पुरुष के निकटतम है, क्योंकि चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर पुरुष स्वयं में अवस्थित होता है।

३. महर्षि दयानन्द 'चित्त' को बुद्धि के साथ ही विज्ञानमय कोश में मानते हैं। महर्षि कहते हैं चित्त स्मरण कराता है। किन्तु चित्त अन्त:करण का कोई चौथा अवयव नहीं है, क्योंकि १३ ही करण बताये गये हैं- देखें ऊपर क्र.१।

४. बुद्धि की सामान्य गतिविधि में चित्त 'बैकग्राउण्ड' में अहंकार से स्मृति में संरक्षित ज्ञान को लाता रहता है, ताकि बुद्धि निश्चयात्मक ज्ञान करा सके।

५. योग-मार्ग पर चलने के लिये बुद्धि की विचार प्रक्रिया का निरोध आवश्यक है इन्हें बुद्धिवृत्ति कह सकते हैं। तदुपरान्त चित्तवृत्तियों का निरोध करना पड़ता है, जो स्वत: अहंकार से उदित होती रहती हैं सांख्य २.४२-44।

६. इसमें सफलता मिलने पर ईश्वर कृपया 'सम्प्रज्ञात योग' की अवस्था प्राप्त होती है 'चित्त' पद/शब्द बुद्धि की इस अवस्था का द्योतक है। यजु. ३४.५ और निघण्टु ३.९ में ईश्वर-कृपया चित्त द्वारा प्रज्ञाप्राप्ति बतायी गयी है।

अत: योग-दर्शन में बुद्धि की अति सूक्ष्म अवस्था को ही चित्त द्वारा व्यक्त किया गया है।

आर्यसमाज ग्रेटर ह्यूस्टन, अमेरिका।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। - **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३**

स्वाध्याय-यज्ञ का व्रत—श्रावणी पर्व

डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'

आर्यों के सभी पर्व सार्थक और वेद-केन्द्रित हैं। **पर्व** शब्द योग और क्षेम दोनों की साधना का प्रतीक है। यदि निरन्तरता न हो, तो योग स्थिर नहीं रह सकता और सतत योग न होता रहे, तो क्षेम- अर्जित की रक्षा भी नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्येक क्षण क्षरण होता ही रहता है। **'स्वाध्याय'** भी एक ऐसा ही यज्ञ है, जो अतीव फलदायी होने के साथ-साथ निरन्तरता की भी अपेक्षा करता है। वैसे तो स्नातक को दीक्षान्त समारोह में ही चेता दिया जाता है कि **स्वाध्यायान्मा प्रमदः** अर्थात् स्वाध्याय में प्रमाद न होने पावे, अन्यथा सारा अर्जित किया हुआ नष्ट हो जाने का भय है, परन्तु साथ ही इसे **यज्ञ** का रूप देकर व्रत और पर्व से भी जोड़ा गया है। यह यज्ञ ही नहीं परम यज्ञ है, क्योंकि यह **ब्रह्मयज्ञ है-**

ब्रह्मयज्ञो ह वा एष यत् स्वाध्यायः।

(आपस्तम्ब)।

शतपथकार महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो इसका सांगरूपक ही रच दिया है-

स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः तस्य वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्मन उपभृत् चक्षुर्ध्रुवा मेधा स्त्रुवः सत्यम् अवभृथः।

(शतपथ। ११/५/६/३/३)

अर्थात् यह स्वाध्याय निश्चय ही ब्रह्मयज्ञ है (जिसके आयोजन से योगमार्गपूर्वक परमात्मा की प्राप्ति होती है।) इस ब्रह्मयज्ञ की **जुहू** हविप्रदाता पात्र, मन **उपभृत्** अर्थात् हविसंग्रहीता पात्र है, **चक्षुः** ध्रुवा अर्थात् सभी पदार्थों के सम्यक् प्रयोग की निरन्तरता का अवधायक है, **मेधा स्त्रुव** अर्थात् हवि-समूह को यज्ञाग्नि में अर्पित करानेवाला पात्र है। इस सम्पूर्ण स्वाध्याय-यज्ञ का परिणाम **सत्य** में स्नान या सत्य की प्राप्ति है, जिसमें स्नात व्यक्ति ही स्नातक होता है।

व्यक्ति आलस्य या प्रमाद के वशीभूत होकर अपनी अर्जित विद्या-निधि को खो न दें, इस कारण सचेत महर्षियों ने वेदानुशासनपूर्वक जिस प्रकार **पञ्च महायज्ञों** का प्रवर्तन किया, सोलह संस्कारों का विधान किया, उसी प्रकार सार्थक पर्वों का प्रचलन किया। ये पर्व मनुष्यों के जीवन को न केवल अनुशासित करते हैं, प्रत्युत धार्मिक कृत्यों से उसे ऊर्जस्वित और सत्य से आप्यायित करते हुए मोक्षमार्ग का पथिक भी बनाते हैं। सूक्ष्मता से विचार करें तो हम पाएँगे कि श्रावणी का पर्व मनुष्य का सर्वोत्तम पर्व है, जो **वेद** के स्वाध्याय को समर्पित है। वर्षा-ऋतु मनुष्य के आवागमन को कष्टकर बनाती है, इस ऋतु का मास श्रावण है।

श्रवण नामक नक्षत्र की पूर्णिमा से यह पर्व प्रारम्भ होता है, अतः मास का **श्रावण** नाम और पर्व का श्रावणी नाम सार्थक है। **श्रवण** का अर्थ सुनना भी होता है और सुनने के लिए **'श्रुति'** अर्थात् **वेद** से उत्तम कुछ भी नहीं। अतः यह नामकरण भी **वेद** के सुनने-सुनाने और प्रकारान्तर से पढ़ने-पढ़ाने का सन्देश दे रहा है। अपनी आजीविका के कर्मों से वर्षर्तु के कारण अधिक अवकाश पाकर मनुष्य को सर्वोत्तम कर्म- (वेद-) स्वाध्याय व प्रवचन में लग जाना चाहिए। यही इस पर्व का सन्देश है।

स्वाध्याय क्या है; इस विषय में विद्वानों का कथन है- **स्वस्य अध्ययनम्** अर्थात् स्वयं का अध्ययन, आत्मनिरीक्षण, स्वकृत-क्रियमाण कर्मों पर विचार, जिससे भविष्य में त्रुटियों को सुधारकर वेदानुसार कर्मों पर चला जा सके। दूसरा अर्थ है- **सु आ अध्याय** अर्थात् किसी ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़कर उसके मर्म को समझ लेना **स्वाध्याय** है। स्वाध्याय के लिए सर्वोत्तम ग्रन्थ **वेद** है, यह पहले कहा जा चुका है, पुनरपि शास्त्र कहता है-

अधीयन्ते इत्यध्याया वेदास्तेषामुपाकर्म उपक्रमम्

अर्थात् **उपाकर्म**- श्रावणी पर्व के सम्बन्ध में तो वेदों का अध्ययन- **अध्याय** ही स्वध्याय है।

स्वाध्याय करने से होनेवाले लाभों के बारे में कहा गया है-

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमानयेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।

(योग./व्यास भाष्य १/२८)

अर्थात् स्वाध्याय से चित्तवृत्ति का निरोध- **एकाग्रता** और इस प्रकार की एकाग्रता से **स्वाध्याय** का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार के स्वाध्याय और योग से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

अन्यत्र शतपथकार ने स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए उसके लाभों को कहा है- 'स्वाध्याय करनेवाला **युक्तमना** एकाग्रचित्त होता है, स्वाधीन होता है, दिनानुदिन उसकी भौतिक-अध्यात्मिक अर्थसाधना प्रबल होती जाती है, वह सुख की नींद सोता है, वह अपना परमचिकित्सक बन जाता है, वह इन्द्रिय-संयमी होता है, उसे **एकारामता**- परमानन्द में सतत रमण करने की प्रवृत्ति प्राप्त हो जाती है, उसकी **प्रज्ञा** प्रतिदिन बढ़ती जाती है, उसे **ब्राह्मण्यम्**- लोक में उत्तम अवस्था की प्राप्ति होती है, **प्रतिरूपचर्याम्**- वह लोक में आदर्श-रूप में प्रतिष्ठित होता है, उसे **यश** की प्राप्ति होती है, उसका लोकसंग्रह पूर्ण हो जाता है- **'लोकपक्तिर्भवति'**, उसकी **प्रज्ञा** की अभिवृद्धि होती जाती है इत्यादि। (शतपथ. ११/४/१)

इसलिए किसी भी रूप में स्वाध्याय करना शास्त्रकारों ने अनिवार्य माना है। भले ही व्यक्ति अलंकृत होकर शय्या पर लेटकर भी स्वाध्याय करता है, तो मानो वह तप कर रहा है-

यदि ह वाऽभ्यलंकृतः सुखे शयने शयानः
स्वाध्यायमधीते।
आ हैव नखाग्रेभ्यस्तपस् तप्यते।
य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते।।

(शत. ११/३/७/४)

आर्यों में तो सदैव से परम्परा रही है कि आचार्य के अधीन ब्रह्मचारी वेदस्वाध्याय-अध्ययन करता है, गृहस्थ में अप्रमादी रहकर स्वाध्याय व प्रवचन करता हे, वानप्रस्थ में नित्य स्वाध्याय करने का आदेश है और संन्यासी होकर अन्य दैनिक अग्निहोत्रादि कर्त्तव्य कर्मों को छोड़ने का तो उसे निर्देश है, परन्तु वेद-स्वाध्याय वह नहीं छोड़ सकता- **संन्यसेत् सर्वकर्माणि वेदमेकन्न संन्यसेत्**, क्योंकि वेद-स्वाध्याय छोड़ देने पर वह शूद्र हो जाता है। (मनु. ६/९५) अतः कहा गया कि जिस प्रकार ग्रह-नक्षत्रादि नियमित रूप से गतिशील रहते हैं, उसी प्रकार स्वाध्याय-यज्ञ भी श्वास-प्रश्वास की तरह अनिवार्य कृत्य है। इसे छोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि इसे छोड़ने पर ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं रहता, अब्राह्मण हो जाता है-

तदहर्ब्राह्मणो न भवति यदहः स्वाध्यायं नाधीते।

(शतपथ)

उक्त शास्त्रीय आज्ञाओं पर विचार करते हुए और श्रावणी पर्व की वेद-मूलकता को देखते हुए आर्यों को आवश्यक है कि वे स्वाध्याय को परमतप समझें और इस स्वाध्याय-यज्ञ में नित्य आहुति दें, अन्यथा यह निश्चित है कि इसमें अनध्याय से आर्यत्व-आर्य सभ्यता, संस्कृति और समाज कभी स्थिर न रह सकेंगे। शतपथकार स्वाध्याय में छूट यह देता है कि स्वाध्याय-व्रत की निरन्तरता के लिए एक ऋचा, एक याजुष मन्त्र, एक सामवेदीय मन्त्र या एक कुंव्यां (ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य) भी पढ़ ले, तो भी व्रत की रक्षा है। आर्यों को अब यह भी सुविधा है कि वे उक्त वेदादि ग्रन्थों के अतिरिक्त महर्षि दयानन्द द्वारा रचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भिक १० समुल्लास, आर्याभिविनय तथा उत्तम विद्वानों के दर्शन, उपनिषदादि के भाष्य का स्वाध्याय करके अपने व्रत की रक्षा कर सकते हैं।

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते।।

(मनु. २/१६६)

वेदाभ्यास-स्वाध्याय ही ब्राह्मण का परम तप है।

सदस्य परोपकारिणी सभा, अजमेर

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है!

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।

(सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास २)

संस्था-समाचार

१-१५ जुलाई २०२१

यज्ञ-प्रवचन : महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा द्वारा सञ्चालित ऋषि उद्यान में प्रतिदिन प्रात: सायं यज्ञों का सम्भव अनुष्ठान निरन्तर बना हुआ है। इन प्रवचनों में वेद, भारतीय संस्कृति तथा विभिन्न शास्त्रों से प्राप्त ज्ञानामृत की चर्चाएँ विद्वानों द्वारा की जाती हैं। जिनमें कई विचार एवं उन विचारों के भी कई पहलू उभर कर आते हैं।

प्रवचन के क्रम में स्वामी आशुतोष परिव्राजक के उद्धबोधन हुए। उन्होंने मनुष्य जीवन को उन्नत करने के लिये वेद, उपनिषद्, दर्शन एवं अन्य कई शास्त्रों की पंक्तियों को उद्धृत कर कई नियम बताए। उन नियमों के पालन हेतु संकल्पों को बढ़ाने का परामर्श दिया। मनुष्य को क्या करने योग्य है, क्या नहीं करने योग्य है इसके लिये कई दृष्टान्त दिये एवं उनकी लम्बी विवेचना की।

भ्राता सोमेश जी ने 'हमारा इतिहास' विषय को क्रमागत आगे बढ़ाते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों, सूत्र ग्रन्थों एवं स्मृति ग्रन्थों के आधार पर प्राचीन राजनियमों का विस्तार से विवेचन किया। राजनियमों के अन्तर्गत राजा बनने के लिये योग्यताओं का वर्णन, युद्ध-नियमों का वर्णन, दण्ड-व्यवस्था, नागरिकों के कर्त्तव्य एवं अधिकार, कर (Tax) व्यवस्था आदि पर उन्होंने चर्चा की। ये व्यवस्थाएँ कैसे लागू की जाती थीं, इनके आधुनिक समय में क्या आदर्श हैं, किन पंक्तियों को आदर्श नहीं कहा जा सकता आदि कई बातों को भी उन्होंने तथ्यों सहित स्पष्ट किया।

गुरुकुल के व्यवस्थापक भ्राता प्रभाकर जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के नवें समुल्लास 'विद्या-अविद्या बन्ध-मोक्ष' का अध्यापन किया। जिसमें उन्होंने विद्या-अविद्या की परिभाषाओं, उनके निहितार्थों को शास्त्रों के उद्धरणों एवं तथ्यों के अनुसार तथा महर्षि दयानन्द की शैली एवं दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर विस्तार से स्पष्ट किया। नवीन वेदान्तियों की मोक्ष के विषय में भ्रान्तिपूर्ण अवधारणाओं का खण्डन महर्षि दयानन्द नवें समुल्लास में करते हैं जिसका विश्लेषण करते हुए भ्राता जी ने उसके औचित्य पर भी प्रकाश डाला। महर्षियों की परम्परा में त्रैतवाद का सिद्धान्त ही सर्वमान्य है जिसमें ईश्वर, जीव एवं प्रकृति ये तीनों पृथक् अनादि सत्ताएँ हैं।

आत्मा का मोक्ष/मुक्ति होने पर आत्मा परमात्मा में विलीन नहीं होता अपितु उस अवस्था में भी आत्मा और परमात्मा का अपना-अपना अगला स्वतन्त्र अस्तित्व होता है इत्यादि अनेक समाधानों को भ्राता जी ने अपनी तार्किकता से स्पष्ट किया।

वृष्टि यज्ञ : ऋषि उद्यान में हर वर्ष वृष्टि यज्ञ का आयोजन किया जाता है। यह आयोजन 'जीव सेवा समिति' के परम श्रद्धेय स्वामी हृदयराम जी एवं परोपकारिणी सभा के विद्वान् अधिकारी डॉ. धर्मवीर जी की प्रेरणा से गत ३० वर्षों से निरन्तर सम्पन्न किया जाता रहा है। इस बार इसका ३१ वाँ वर्ष है। प्रतिदिन प्रात: दैनिक यज्ञ के उपरान्त वृष्टि-यज्ञ के मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाती हैं। इस वर्ष इसका प्रारम्भ ६ जुलाई से परोपकारिणी सभा के अनन्य सहयोगी एवं निष्ठावान् कार्यकर्त्ता श्री वासुदेव आर्य एवं श्री जगदीश शर्मा जी के सौजन्य से हुआ। पश्चात् १४ जुलाई से जीव सेवा समिति के कार्यकत्ताओं द्वारा वृष्टि-यज्ञ को विधिपूर्वक निरन्तर रखा गया। यज्ञ के ब्रह्मा का पद स्वामी आशुतोष जी निर्वहन कर रहे हैं।

गुरुकुल : परोपकारिणी सभा द्वारा सञ्चालित ऋषि उद्यान में चल रहे महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल के पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन किये गये हैं। गुरुकुल के विद्यार्थियों को अन्य विषयों की भी आधारभूत जानकारियाँ हों तथा वे किसी विषय में पिछड़े न रहें अत: परोपकारिणी सभा के अधिकारियों ने यह निश्चय किया कि मूलरूप से मुख्य पाठ्यक्रम महर्षि निर्दिष्ट ही हो तथा विद्यालयी पुस्तकों का भी अध्यापन साथ में किया जाय एवं साथ ही परीक्षाएँ दिलाने की भी व्यवस्था हो। इस योजना को परिणत रूप देते हुए गुरुकुल में विद्यालयी पुस्तकों की कक्षाएँ प्रारम्भ कर दी गयी हैं तथा कक्षाओं का व्यवस्थित रूप से नियत कर दिया गया है।

- ब्र. रोहित आर्य

ऋग्वेद भाष्य का प्रकाशन

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेद भाष्य (संस्कृत एवं हिन्दी-पदच्छेद, अन्वय, पदार्थ एवं भावार्थ सहित) का प्रकाशन किया जा रहा है।

महर्षि/वेदभक्त दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेदभाष्य प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण कार्य में आर्थिक सहयोग प्रदान कर यशोभागी बनें।

	पृष्ठ संख्या	प्रकाशन व्यय
ऋग्वेद भाष्य चतुर्थ भाग (द्वितीय मण्डल)	(४८४)	एक लाख रु. मात्र
ऋग्वेद भाष्य सप्तम भाग (पञ्चम मण्डल)	(६६६)	एक लाख तीस हजार रु. मात्र
ऋग्वेद भाष्य दशम भाग (सप्तम मण्डल-II)	(१२८)	पैंसठ हजार रु. मात्र

आपश्री वेदभाष्य के तीनों भाग, किसी एक भाग अथवा आंशिक रूप में रु. २१०००/- की राशि प्रदान कर सकते हैं। दानी महानुभावों का (सम्बद्धभाग पर) नामोल्लेखपूर्वक आभार प्रदर्शन किया जाएगा। अपनी सहयोग राशि **'परोपकारिणी सभा, अजमेर'** के नाम के खाते में जमा कर टेलीफोन द्वारा सूचित कर दें, जिससे रसीद भेजी जा सके।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रम

शीतकालीन योग-साधना शिविर - ०३ से १० अक्टूबर २०२१

डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला - ०६ अक्टूबर २०२१

ऋषि मेला - १२, १३, १४ नवम्बर २०२१

[illegible]

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चारों भागों का मूल्य = १३००/-
डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:- दूरभाष - 0145-2460120

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-सम्पादक**

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि ''**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**'' यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२११२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१५ से २० जुलाई २०२१ तक)

१. डॉ. टी. एन. मिश्रा, दिल्ली २. श्री घनश्याम काबरा, अहनेर ३. श्री पुरुषोत्तम दास बूब, अजमेर ४. श्रीमती सुशीला बूब, अजमेर ५. श्रीमती शान्ति देवी सोनी, अजमेर ६. श्री बालमुकुन्द व श्रीमती चन्द्रकान्ता छापरवाल, अजमेर ७. मै. माहेश्वरी ऑटोमोबाइल्स, अजमेर ८. श्रीमती उर्मिला पारीक, अजमेर ९. श्रीमती पुष्पा उपाध्याय, अजमेर १०. श्री ईश्वरलाल ठन्ना, उज्जैन ११. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट १२. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१५ से २० जुलाई २०२१ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. डॉ. टी. एन. मिश्रा, दिल्ली ३. श्री बालमुकुन्द व श्रीमती चन्द्रकान्ता छापरवाल, अजमेर ४. आर्य ओमप्रकाश गुप्त, लखनऊ ५. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ६. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री सुदर्शन कुमार कपूर, पंचकूला २. स्वामी आशुतोष, अजमेर ३. श्री विपिन कुमार, दिल्ली ४. श्री पंकज दीवान, दिल्ली ५. श्री चन्द्रप्रकाश, अहमदाबाद ६. श्रीमती सीमा गुप्ता, बिलासपुर ७. श्री सुधीर गुप्ता, बिलासपुर ८. श्री सौमित्र गुप्ता, बिलासपुर ९. श्रीमती निर्मला गुप्ता, बिलासपुर १०. श्रीमती प्रेमलता गुप्ता, बिलासपुर ११. श्रीमती निधि आर्य, बैंगलोर १२. श्री जयसिंह गहलोत, पालड़ी (जोधपुर) १३. श्री सुधीर ठुकराल, दिल्ली १४. श्री पुरुषोत्तम भारद्वाज, जूण्डला (करनाल) १५. श्रीमती रीना राणा- जूण्डला (करनाल)।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ — **पृष्ठ :** २१६ — **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा — **पृष्ठ :** ८० — **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर — **पृष्ठ :** ३०४ — **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग — **पृष्ठ :** २८८ — **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी — **पृष्ठ :** १७४ — **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति ‘वैचारिक क्रान्ति’ को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: ‘सत्यार्थ प्रकाश’ की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व ‘विश्व पुस्तक मेला’ दिल्ली में प्रतिवर्ष ‘सत्यार्थप्रकाश’ के साथ ‘महर्षि का जीवन-चरित्र’ एवं ‘आर्याभिविनय’ पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है।‘सत्यार्थप्रकाश’ ‘महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र’ के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ ‘सत्यार्थप्रकाश वितरण’ अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४